

प्रश्नकर्ता: नमस्ते सर, मेरा सवाल है कि माया क्या है?

आचार्य प्रशांत: तीन शब्दों में ही सब पूछ डाला। मैं तो अभी प्रतीक्षा कर रहा था कि प्रश्न शुरू होगा; शुरू होते ही खत्म हो गया।

माया क्या है? जो कुछ भी आपके लिए है, वो सब माया है; जो कुछ भी आपके अनुभव में आ सकता है। आप कहते हैं – मैंने जाना, मैंने देखा, मैंने सुना, मैंने छुआ, मेरे साथ हुआ; वो सब माया है। स्थूल विषय ही नहीं कि ये मेज़ है इसको मैंने ऐसे छू दिया (अपने सामने रखे मेज़ को स्पर्श करते हुए), सूक्ष्म विचार और कल्पनाएँ भी। आप जिस भी विषय का चिंतन कर सकते हैं, वो माया है।

माया का सम्बन्ध वास्तव में विषय से है ही नहीं क्योंकि अगर माया का सम्बन्ध विषयों से होता तो कुछ तो ऐसे विषय होते, कम-से-कम कोई एक तो ऐसा विषय होता जो माया के बाहर होता। अगर माया का सम्बन्ध विषयों से ही होता तो विषय और विषय में मायागत भेद भी होते। माया किसी विषय को नहीं छोड़ती क्योंकि उसे विषय से कुछ लेना-देना नहीं है, उसको लेना-देना है उससे जो विषय का अनुभवकर्ता है।

विषय समझते हैं? विषय माने क्या? जो कुछ भी आपके सामने है, आपके अनुभव का ऑब्जेक्ट (वस्तु)। मैं इस मेज़ पर हाथ रखकर के बैठा हूँ, ये विषय है। आप मुझे देख पा रहे हैं, मैं आपकी दृष्टि का विषय हूँ। तो सब विषयों के अनुभोक्ता तो हम ही हैं न? जो कुछ भी हमें प्रतीत हो रहा है, सब माया है।

वो क्यों माया है? क्योंकि उसमें कोई बड़ी बुराई है। जब हम कह रहे हैं कि सारे ही विषय माया हैं बिना किसी अपवाद के – नहीं अंतर पड़ता है कि कौनसा विषय है, सब विषय माया हैं – तो क्या विषयों में कोई बड़ी बुराई है कि जानने वालों ने कह दिया, ‘सब माया है’? विषयों को त्याग दो? जरूर विषयों में ही कुछ बुरा होगा?

न न न, विषयों में न ही कोई बुराई है, न कोई अच्छाई है, हम ऐसे हैं कि हमें कुछ साफ़ दिखता नहीं, हम ऐसे हैं कि हमें कोई विषय समझ में आता नहीं। इसीलिए किसी भी विषय को लेकर के हमें जो कुछ समझ में आता है, वो माया है।

विषय बुरा नहीं है, विषय अच्छा भी नहीं है। अरे! हमें तो ये भी नहीं पता कि विषय है भी कि नहीं है। पर वो जो कुछ भी है हमारे अनुभव क्षेत्र में है न। हमारे अनुभव क्षेत्र में है और हम इतने बड़े तीरंदाज़ हैं, ऐसे सूरमा हैं कि जो कुछ भी हमारे अनुभव क्षेत्र में है, हम उसको विकृत ही कर डालते हैं। जब मैं कह रहा हूँ विकृत कर डालते हैं, तो वो भी छोटी-आधी बात है क्योंकि विकृत करने के लिए भी कोई साबुत चीज़ चाहिए। हमें तो ये भी नहीं पता कि कोई साबुत चीज़ है भी कि नहीं।

ये तौलिया है (अपना तौलिया दर्शाते हुए) तह किया हुआ, ठीक? मैं इसको ऐसे खोल दूँ तो मैंने इसकी जो तह की व्यवस्था थी, उसको क्या कर दिया? विकृत कर दिया। ये तो विकृति हुई। विकृति के लिए आवश्यक है कि कोई आधारभूत तथ्य होना तो चाहिए न? यहाँ पर वो मौजूद था, क्या था? तौलिया था और उसमें तह की एक व्यवस्था थी; मैंने वो व्यवस्था छिन्न-भिन्न कर दी।

अभी कोई आ सकता है, ऐसा सूरमा भी (जो एक तौलिया की कल्पना करके, उसे मोड़ सकता है) उसने तौलिया खराब कर दिया। आप मुस्कुरा रहे हैं, वो गंभीर है। (पुनः मोड़ने का इशारा करते हुए) उसने क्या किया अभी-अभी? उसने तौलिया खराब कर दिया। और उसको पूरा भरोसा है कि उसने तौलिया खराब कर दिया। माया इतना ही नहीं करती कि जो है उसको विकृत कर दे; माया उसको भी विकृत कर देती है जो है ही नहीं। जो है ही नहीं उसको विकृत कैसे कर देती है? कल्पना, माया कल्पना है।

‘अच्छा अच्छा, तो माने तथ्य तो एक तरफ़ है न। जो कल्पित है, मात्र वही माया है। बड़ी राहत मिली, बड़ी राहत मिली! माने तथ्य ठीक है, तथ्य माया नहीं है; जैसे ये मेज़ है, ये माया नहीं है। मैं कल्पना करने लग जाऊँ कि मेज़ पर शरबत रखा हुआ है, तो वो माया है।’

साहब, जो (काल्पनिक) तौलिये को विकृत कर रहा था, उसके लिए तौलिया था कि नहीं था? ये तौलिये को खराब करा गया अभी-अभी; यहाँ तौलिया था उसको खराब किया गया। जो ये कर रहा था (कल्पना) सिर्फ़ उसके लिए बताइए, अपने लिए नहीं। जो ऐसा कर रहा था उसके लिए तौलिया था कि नहीं था? था, और उसके देखे तो तौलिया है। आप उसे कितना भी आश्वस्त कर लें कि तौलिया नहीं है, वो कहेगा ‘मेरे लिए तो...’

श्रोतागण: तौलिया है।

आचार्य: ये मेज़ है न आपके लिए?

श्रोतागण: हाँ।

आचार्य: ये मेज़ आपके लिए है, वो तौलिया उसके लिए है। आपको कैसे पता कि मेज़ तौलिया नहीं है? आपको कैसे पता कि मेज़ वास्तव में है ही?

कौन गवाही देगा? क्या प्रमाण है कि ये मेज़ वास्तव में है? एक ही प्रमाण है, आपका अनुभव। तो आपके अनुभव को ही माया कहते हैं, क्योंकि आपके अनुभव का कोई भरोसा नहीं है। एक ही चीज़ का आपको कभी एक अनुभव होता है, कभी दूसरा अनुभव होता है। जो अनुभोक्ता है, जो अनुभव कर रहा है वो स्वयं अपने अनुभवों की निर्मिति मात्र है। अनुभोक्ता कहाँ से आ गया? वो अनुभव करता जाता है और अनुभव उसे बदलते जाते हैं। तो फिर वो अनुभवों का निष्पक्ष प्रमाणाता कैसे हो सकता है?

किसी भी चीज़ का निष्पक्ष अवलोकन करने के लिए या मूल्यांकन करने के लिए या सत्यापन करने के लिए मुझे उस चीज़ से अलग होना चाहिए न। नहीं तो निष्पक्षता हो ही नहीं सकती, या हो सकती है? मैं जो हूँ ही, मैं उसके विषय में कुछ नहीं जान सकता। मैं जो बन बैठा हूँ, उसके विषय में नहीं जाना जा सकता और हम बनते ही अपने अनुभवों से हैं – इसी को द्वैत कहते हैं। जहाँ जो द्रष्टा है वो दृश्य का ही निर्माण है। और चूँकि वो दृश्य से बना है, अपने अनुभवों से बना है इसलिए वो अपने अनुभवों के अनुसार दृश्यों को देखता नहीं है, प्रक्षेपित करता है। सब दृश्य उसके कल्पित दृश्य हैं, तथ्य नहीं हैं दृश्यों में।

हम आमतौर पर सच्चाई को तीन तलों पर रखते हैं। हम कहते हैं – सत्य, तथ्य, कल्पना। सत्य वो जो बदल ही नहीं सकता, चाहे समय बीत जाए, दुनिया बीत जाए, अनुभव करने वाला बदल जाए। सत्य वो जो नित्य है, अपरिवर्तनीय, जिसमें कभी परिवर्तन नहीं आएगा। जो समय की धारा से बाहर है, उसे कहते हैं सत्य।

तथ्य क्या होता है? तथ्य सत्य से नीचे होता है। तथ्य सामाजिक होता है। उदाहरण देता हूँ – आप यहाँ (सत्र में) इतने लोग बैठे हुए हैं और मैं कह दूँ कि यहाँ (मेज़ पर) शरबत रखा हुआ है और यहाँ मान लीजिए दोसौ लोग बैठे हुए हैं और एक-सौ-निन्न्यानवें को ये शरबत दिख नहीं रहा। एक मैं हूँ जो कह रहा हूँ कि यहाँ शरबत रखा हुआ है। आप मुझे उठाकर के पागलखाने में डाल देंगे।

तथ्य सामाजिक होता है, तथ्य बड़ा लोकतांत्रिक होता है। जो सबको प्रतीत हो रहा है वही तथ्य है, और तथ्य का और कोई प्रमाण होता ही नहीं है। सबको दिखाई दे रहा है न तो तथ्य होगा ही। अब यहाँ पर मैं अकेला अल्पमत में आ गया न? आप दोसौ लोग बोल रहे हैं यहाँ पर शरबत नहीं है और मैं बोल रहा हूँ यहाँ शरबत है। और दुनिया की कोई भी अदालत किसके पक्ष में निर्णय देगी? जो उसको दिखाई दे रहा होगा। उसको भी यही दिखाई दे रहा है कि यहाँ पर शरबत नहीं है तो कहेगी, 'नहीं है और जिसको दिख रहा है वही पागल है।'

और मैं अपना पक्ष कैसे प्रमाणित करूँ? मेरे पास कोई तरीका नहीं है। तो तथ्य सामाजिक होता है। तथ्य का बस यही है कि जैसा मुझे दिख रहा है, वैसा आपको दिख रहा है, वैसा उसको दिख रहा है, तो हम कह देते हैं ये बात सच है; क्योंकि सबको दिख रही है न? समझ में आ रही है बात?

और सबको एक-सी जानते हैं क्यों दिखती है? क्योंकि हम सबकी शारीरिक संरचना एक जैसी है। जिनकी शारीरिक संरचना अलग होगी उनके तथ्य बदल जाएँगे। अभी यहाँ एक कुत्ते को ले आया जाए जिसका शरीर अलग है, एक खरगोश को ले आया जाए जिसका शरीर अलग है, तो उसे यहाँ मौन में भी बहुत कुछ सुनाई दे जाएगा, जो आपको नहीं सुनाई दे रहा। उनके लिए वह तथ्य होगा। आप कहेंगे, 'यहाँ मौन है।' आपके लिए तथ्य है

मौन। वो कहेंगे, 'नहीं साहब, यहाँ तो बहुत शोर है', और उनको सुनाई दे रहा है। तो तथ्य हमारे शरीर का गुलाम होता है। तथ्य हमारे शरीर से उठता है। और समाज में जितने लोग हैं, सबके शरीर एक जैसे हैं मूलभूत रूप से, इसलिए तथ्य सामाजिक होता है। समझ में आ रही है बात?

लेकिन सत्य नहीं होता तथ्य। तथ्य अगर सत्य होता तो जहाँ आपके लिए मौन है, वहीं खरगोश और कुत्ते के लिए भी मौन होता। बीस हर्ट्ज़ (आवृत्ति की माप) से नीचे बीस हजार हर्ट्ज़ से ऊपर, कुछ नहीं सुनाई देता आपको। अल्ट्रावायलेट (पराबैंगनी) भी नहीं दिखाई देता आपको, इन्फ्रारेड (अवरक्त) भी नहीं दिखाई देता आपको। चार हजार एंगस्ट्रॉम से नीचे, आठ हजार एंगस्ट्रॉम से ऊपर कुछ नहीं देख सकते।

कोई और है जो देख लेता है। उसको दिखाई पड़ रहा है। वो कहेगा, 'यहाँ कुछ है।' आप कहेंगे, 'मुझे नहीं दिखाई पड़ रहा।' आपको नहीं दिखाई पड़ रहा तो आपके लिए तथ्य नहीं है। जबकि यहाँ पर वास्तव में कुछ हो सकता है। बस जो है वो चार हजार एंगस्ट्रॉम से नीचे की वेवलेंथ पर रेडिएशन विकीर्ण कर रहा है, आपको नहीं दिखाई देगा। आपको नहीं दिख रहा। आप कहेंगे, 'है ही नहीं, बिल्कुल नहीं है।' है तो, बस आपके अनुभव में नहीं आ रहा है।

हम इतने अहंकारी लोग होते हैं कि अपने अनुभव को ही सत्य की कसौटी मान लेते हैं। मैं कहता हूँ, 'मेरे अनुभव में आया तो सच है, मेरे अनुभव में नहीं आया तो सच नहीं है।' इसी को माया कहते हैं। माया है अहंकार का स्वयं को सत्य मान लेना। माया है अपने अनुभवों को ही सच मानकर बैठे रहना और माया लोक-संस्कृति में इतनी घुस जाती है कि फिर हम कहने लगते हैं कि साहब, आँखों देखी, कानों सुनी बात है तो सच्ची ही होगी।

माया मुस्कुराती है, माया कहती है, 'किसकी आँखें? किसकी आँखें? तुम्हारी आँखें। तुम हो कौन? तुम्हारी आँखों ने देखा न इसीलिए तो झूठ है। तुम्हारे कानों ने सुना न, इसीलिए तो झूठ है, क्योंकि तुम्हारी आँखें सच देख नहीं सकती।' कृष्ण कहते हैं, 'बड़े अभ्यास से इंद्रियों को निर्मल बनाया जाता है।'

प्रमाणित करूँ माया है ठीक अभी? चलिए दस-पन्द्रह मिनट से बोल रहा हूँ, बताइए आपने क्या सुना? सब अपने-अपने मन में तीस सेकंड का एक वक्तव्य तैयार कर लें कि मैंने क्या कहा। मैं तो एक हूँ न आपके देखे? या यहाँ कई अलग-अलग बैठे हुए हैं वक्ता? एक ने ही कहा न? तो एक ही बात कही होगी। एक ही बात कही होगी न? सोच लीजिए कि मैंने क्या कहा।

करें प्रयोग? दोसौ अलग-अलग उत्तर आने वाले हैं। दोसौ अलग-अलग उत्तर आने वाले हैं, और यही नहीं कि वो एक ही बात को अलग-अलग शब्दों में कह रहे होंगे। आप हैरत में पड़ जाएँगे; आधी से ज़्यादा बातें ऐसी बोली जाएँगी जो मैंने कही ही नहीं। और जो बाकी आधी हैं उसमें दो-तिहाई ऐसी होंगी जो बहुत महत्व की नहीं हैं पर पकड़ ली गईं। जो महत्व का है वो कोई एक-दो लोग होंगे जो बता पाएँगे, कि ये बोला।

ऐसा कैसे हो गया कि जब एक ही चीज़ थी तो सबके अनुभव में अलग-अलग आयी? तो बताइए फिर हमारे अनुभवों का महत्व क्या है? कितनी गंभीरता से लें अपने अनुभवों को? पिछले दस मिनट में ही आपको जो अनुभव हुए हैं, वही मायावी हैं। आपको बिलकुल नहीं पता मैंने क्या कहा? जबकि यहाँ पर कई तरह की रिकॉर्डिंग चल रही है, ये (माइक) एक जगह भेज रहा है, ये दूसरी जगह, ये तीसरी जगह और एक यहाँ (अपने कॉलर में

लगे माइक की ओर इंगित करते हुए) लगा हुआ है। इन चारों से पूछेंगे तो ये बताएँगे कि मैंने एक ही बात कही।

और यहाँ आप चार लोगों से पूछें लें तो आप कहेंगे चार अलग-अलग बातें। एकदम चार अलग-अलग बातें। खुदा-न-खास्ता यहाँ अगर किसी का नाम ही अगर माया हो, तो वो तो एकदम ही अलग बताएँगी। कहेंगी, आपने कहा, 'माया विश्वसुंदरी है, माया...' ये माया है, हम माया हैं। उसको हमने ऐसे बना लिया है – जगत् माया है, जीवन माया है। न जगत् माया है, न जीवन माया है, हम माया हैं।

क्योंकि हमारे कान कामना के कारण साफ़ सुन नहीं पाते। आप वो ही सुनते हो जो आपको सुनना है और अहंकार को अपनी अनुगूँज को ही सुनना है और सत्य को सुनने से बचना है। अहंकार को बस अपने होने की गूँज सुननी है क्योंकि वो बहुत डरा हुआ होता है। वो कुछ ऐसा सुन ही नहीं सकता जो उसको तोड़ देगा। तो मैं कुछ भी कह रहा हूँ आप सुनेंगे वही जो आपको सुनना है। और जो आपके लिए वाकई मतलब की और महत्व की बात होगी आप उसको चुन-चुनकर चावल में से कंकड़ की तरह बीनकर अलग कर देंगे, सुनेंगे ही नहीं। कितनी खतरनाक बात है! इसलिए 'माया महा ठगनी हम जानी'। वो ठगती है।

सच कोई अदृश्य तो है नहीं। न उसको आँख मिचोली, लुकाछिपी खेलने से कोई प्रयोजन है। वो तो समक्ष है, कूटस्थ है। तो फिर ज़्यादातर लोग झूठ में ही क्यों जीते हैं? झूठ में ही क्यों मर जाते हैं? क्योंकि सच होगा चारों तरफ़, हम उसे स्वयं में प्रवेश नहीं करने देते। जैसे तेल की बूँद पानी में। आप उसे पानी में एकदम गहरे भी छोड़ दीजिए तो भी पानी उसके भीतर प्रवेश नहीं करेगा। वह अपना अस्तित्व बचाकर रखती है और फिर जल्दी से उठकर के सतह पर आ जाएगी।

वो कहेगी, 'चारों तरफ़ होगा पानी, मुझमें नहीं है पानी।' वैसे ही हम हैं। अब समझ में आ रहा है, 'पानी में मीन प्यासी, मोहे सुन-सुन आवे हाँसी'? वो चारों तरफ़ है, हम उसे स्वयं में नहीं आने देते। हमारे कान सच की बरसात में भी झूठ को सुन लेते हैं। हमारी आँखें वो देख लेती हैं जो है ही नहीं। जो है ही, वो हमें दिखाई नहीं देता इसलिए फिर सत्य को अगोचर कह दिया जाता है। सत्य नहीं अगोचर है, या ऐसे कह दीजिए कि सत्य अगर अगोचर है भी तो किसके लिए? यही वेदान्त का मूल प्रश्न है – किसके लिए? *फॉर हम?*

सत्य अगम है। कौन उसमें गमन नहीं कर पाता? झूठ ही तो। सत्य में प्रवेश नहीं करा जा सकता। किसके द्वारा?

यही वेदान्त कहता है – कोई भी वस्तुगत, *ऑब्जेक्टिव* तथ्य होते नहीं हैं। आपसे कोई भी बात बोली जाए आप तुरंत पूछिए, 'ये बात किसके लिए है? किसके लिए है ये बात?' सत्य निराकार है, ये भी कोई *एब्सल्यूट*, वस्तुगत तथ्य नहीं है। किसके लिए निराकार है? वो जिसका बड़ा स्वार्थ है साकार बने रहने में, माने? हम, हमारे लिए है वो। हमें साकार बने रहना है तो फिर हम कह देते हैं वो निराकार है क्योंकि दूरी है न, दूरी है।

कैसे समझाएँ दूरी को? तो कह देते हैं, 'वो निराकार है इसीलिए हमें कुछ पकड़ में, समझ में नहीं आता।' आपका साकारता में स्वार्थ है इसलिए सत्य आपके लिए निराकार है। साकार होने के साथ तादात्म्य हटाइएगा, स्वार्थ हटाइएगा, फिर बताइएगा कि सत्य निराकार है क्या? समझ में आ रही है बात?

माया क्या है फिर? जिसको हम कहते हैं, 'मैं' उसी का दूसरा नाम है माया। जिसको 'अहम्' कहा जाता है वही माया है। माया माने जो है नहीं पर

होती प्रतीत होती है। 'या मा सा माया।' है नहीं पर लगता है कि है। ठीक वही लक्षण अहंकार के हैं। वो है नहीं पर जीवनभर अपने आपको कहता है, 'मैं हूँ अस्तित्वमान; मैं ही तो हूँ।' भीतर-ही-भीतर पता उसे सबकुछ है कि हूँ नहीं मैं, इसीलिए डरा रहता है। अब समझ में आ रहा है दुनिया के सारे डर की वजह क्या है?

जो भी आदमी डरा हुआ होगा, वो किसी ऐसी चीज़ को बचाने की कोशिश कर रहा होगा जो बचाई जा ही नहीं सकती। अरे! बचाना तो छोड़ दीजिए, कुछ होगा तो बचाया जाएगा न? वो किसी ऐसी चीज़ को अस्तित्वमान घोषित करने का लगातार प्रयास कर रहा है जो है ही नहीं। तो डरा हुआ तो रहेगा ही न? किसी भी दिन झूठ पकड़ा जाएगा, किसी भी दिन पोल खुल जाएगी। भीतर बड़ा डर रहता है। और अगर आप डरे हुए हैं जीवन में, तो देख लीजिएगा उसका भी एकमात्र कारण यही हो सकता है।

सत्य की तो ये बात है कि वो गिरता नहीं, टूटता नहीं, अडिग है, अकंप है, अटूट है, अखंड है। उसे पाया नहीं जा सकता, उसे खोया नहीं जा सकता; तो उसको लेकर कोई डरा हुआ हो सकता है क्या? जिसको खोया जा ही नहीं सकता, जो टूट ही नहीं सकता, जिससे बड़ा उससे कुछ आकर निकल ही नहीं सकता, आग जिसको जला नहीं सकती – श्रीकृष्ण याद आ गए? 'नैनं दहति पावकः।'

कोई भी चीज़ आ करके जिसको छेद नहीं सकती, काट नहीं सकती, फाड़ नहीं सकती – 'नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि।' याद आ गए? उसको लेकर कोई डर हो सकता है क्या? वैसी तो कोई चीज़ मिल जाए तो आप ठाठ में जिएँगे। कहेंगे, 'बढ़िया, कुछ ऐसा मिल गया है जो न टूटेगा, न छिनेगा। काल भी उसको कभी काट नहीं पाएगा।' पर हम सब डरे, सहमे, सकुचाए जीते हैं।

वजह? जीवन का आधार ही किसी झूठ को बनाया है, उसी को माया कहते हैं।

माया आपको दो तरह से समझाया जाता है। कहते हैं, आवरण करती है वो, आवरण शक्ति होती है उसमें। आवरण माने सच के ऊपर वो आवरण बन जाती है। जो है ही, माने सत्य, उसको देखने नहीं देती आपको – ये माया की आवरणशक्ति है। और दूसरी कहते हैं, विक्षेपशक्ति; जो नहीं है वो आपको दिखा देती है। प्रक्षेप ही विक्षेप है, प्रक्षेपण करना ही विक्षेप है।

नहीं है, पर आपने देख लिया, कैसे? हमें लगता है। हम सबको लगता रहता है न बहुत कुछ?

एक आदमी आया, उसकी शक्ल देखी, कुछ नहीं जानते उसके बारे में (लेकिन) बुरा लग गया। नहीं, हमें तो लगता है। हम सबको न जाने कितनों से नफ़रत है, क्यों नफ़रत है? हमें बुरा लगता है। ये जो लगना है न, यही माया है।

प्यार भी ऐसे ही हो जाता है हमें – ‘अच्छा लगता है।’

नहीं, लगता है माने क्या? ‘बस, लगता है।’ यही माया है; क्योंकि आपको लगता है, बगल वाले को नहीं लगता है। आपको भी सुबह लगता है, शाम को नहीं लगता है। आपको भी अगले दो दिन तक लगता है, तीसरे दिन नहीं लगता है। आज आपको जो कुछ बहुत लगता-लगता है, आज से दस साल पहले भी लगता था क्या? दस साल पहले जो बड़े लगते थे, वो आज बहुत ज़ोर की लगते हैं। होता है कि नहीं होता है? यही माया है। और जब कुछ लग रहा होता है, उस वक़्त वही सच लग रहा होता है। यही है कि नहीं? यही लगाई-बुझाई माया है। ‘लग गया।’

वेदान्त कहता है सबसे ज़्यादा सतर्क अपनेआप से रहो और तुम अभिव्यक्त होते हो अपने अनुभवों में; अपने अनुभवों से सावधान।

‘मैं’ को किसी ने देखा नहीं, पर ‘मैं’ की प्रतीति होती है मैं के अनुभवों से। मैं का विचार, मैं का अनुभव है। मैं की भावना मैं का अनुभव है। अपने अनुभवों, अपने विचारों, अपनी भावनाओं से सावधान रहो, अपने मत से सावधान रहो। अपनी विचारधारा से सावधान रहो। जो कुछ भी तुम्हारा है, उससे सावधान रहो। जो तुम्हारा है, वही तुम्हारा काल है, वही तुम्हारा दुश्मन है, वही तुम्हारा झूठ है। जिसके साथ भी मम् का नाता जोड़ दिया, जान लो तुम खा गए उसको और वो खा गया तुमको। समझ मैं आ रही है बात?

जगत् को माया नहीं बोला वैदिक ऋषिओं ने। किसको माया बोला है? जगत् के द्रष्टा को। जगत् का द्रष्टा मायावी है। कारण? वो जगत् से लिप्त है, वो जगत् के प्रति कामुक दृष्टि रखता है इस कारण वो मायावी है। जगत् का उसे कुछ पता नहीं लगने पाता कभी। जगत् है या नहीं है, ये भी वो जान नहीं पाता कभी। जगत् की अवमानना मत करो।

और ये विशेषकर अद्वैत वेदान्त पर आक्षेप लगता रहता है कि ये मायावाद है। ‘ये तो कह देते हैं कि दुनिया है ही नहीं। अरे! दुनिया नहीं है तो तुम भी नहीं हो न? चलो तुम गायब हो जाओ।’ इस तरह के फूहड़ चुटकुले चलते हैं, कि जब दुनिया नहीं है तो तुम भी नहीं हो, चलो छूमंतर होकर दिखाओ। यह अनपढ़ों की बातें हैं।

आपसे कहा जा रहा है कि साफ़-साफ़ देखिए। नहीं देख पा रहे तो प्रयोग करके जानिए कि आपकी दृष्टि निरंतर धूमिल रहती है। आपके कानों में बीमारी है और आपका मन ममत्व से ग्रसित है, बीमार है। आपका कोई भी

अनुभव विश्वास योग्य नहीं है। देखा नहीं है, जब युवावस्था में नया-ताज़ा पहली बार फूल खिलता है प्रेम का, मल भी कमल जैसा दिखने लगता है?

सबको दिख रहा होगा, उसके माँ-बाप को दिख रहा होगा, उसके दोस्त-यारों को दिख रहा होगा, पूरे मोहल्ले को दिख रहा होगा, 'तू कर क्या रहा है? कहाँ...?' बोलेगा, 'नहीं, सुंदरता तो देखने वाले की आँखों में होती है।' यही माया है। जो कुछ मात्र आपकी आँख में है और कहीं नहीं उसको माया कहते हैं। तो जैसे ही आपने कह दिया, '*ब्यूटी लाइज़ इन द आइज़ ऑफ द बिहोल्डर*' – ये मायावी वक्तव्य है।

अच्छा, आप एक पागलखाने जाते हैं, आप कैसे जान जाते हैं वो पागलखाना है? आपको नहीं बताया गया है वो पागलखाना है। आपको कैसे पता चलेगा कि वहाँ सब पागल-ही-पागल हैं? कैसे पता चलेगा? क्योंकि वहाँ जो कुछ है, वो किसी की आँख में है बस। मैं एक पागल हूँ, मेरी आँख में क्या है?

मेरी आँख में है कि यहाँ कहीं ज़रूर एक बंदूक है, एक तोप है, एक चाकू है जो मुझे मारने के लिए लाया गया है और मैं वहाँ एक कोने में बैठा हुआ हूँ, वहाँ ऐसे लगकर और ऐसे-ऐसे काँप रहा हूँ (काँपने का अभिनय करते हुए)। और पूछा गया है कि बेटा इतना क्यों परेशान हो, क्यों काँप रहे हो? तो क्या बोलूँगा? यहाँ बंदूक है, यहाँ तोप है जो लायी गई है मुझे मारने के लिए।

वो कहेगा, 'कहाँ हैं?' बोले, 'मैंने देखा।' सिर्फ़ उसने देखा। जो कुछ सिर्फ़ आपने देखा हो वही आपका पागलपन है। माने आपकी व्यक्तिगत सत्ता ही आपका पागलपन है, उसको माया कहते हैं। क्योंकि वो सिर्फ़ आपके लिए है न?

फलाना बहुत सुंदर लगता है; किसको? सिर्फ मुझको। फलाने से बड़ी रंजिश है; किसको? मुझे। ये झूठ है और जितना आप अपनी व्यक्तिगत दुनिया में और अपने व्यक्तिगत अहंकार के केंद्र से जीने लगते हैं, जान लीजिए आप उतने विक्षिप्त हो चुके हैं। और ऐसा आदमी अपने-आपको बचाने के लिए अपने-आपको दुनिया से काट लेता है।

वो किसी और की बातें भी नहीं सुनना चाहता, वो कहता है, 'नहीं, मुझे पता है न।' वो जानबूझ करके दूसरों से किनारा करता है क्योंकि दूसरे आएँगे तो कहेंगे, 'जो कुछ तुम देख रहे हो हमें तो दिख नहीं रहा।' जैसे ही वो ऐसा बोलेंगे इस आदमी को धक्का लगेगा। इसको विवश होना पड़ेगा अपनी बातों पर पुनर्विचार करने के लिए, अपने मत का पुनर्मूल्यांकन करने के लिए। उसी चीज़ से ये डरता है, तो किसी से बात ही नहीं करता।

आपने देखा होगा कि जो लोग किसी एक विशेष मत को लेकर बड़े आग्रही हो जाते हैं, वो विरोधी मत से एकदम छुआछूत का रिश्ता रख लेते हैं। देखा है कि नहीं? जिन लोगों से आपकी दुश्मनी हो गई एक बार, आप उनसे बात करना बंद कर देते हैं न? यही तो दुश्मनी की निशानी है।

तो आप समझ रहे हैं क्या चल रहा है भीतर-भीतर? आपके भीतर कुछ है जो जानता है कि अगर उससे बात कर ली तो दुश्मनी कम हो जाएगी, तो इसलिए जानबूझकर के आप बातचीत बंद कर देते हैं; क्योंकि आपको दुश्मनी बचाकर रखनी है; क्यों बचाकर रखनी है? क्योंकि अहंकार ऐसा ही चाहता है। अहंकार सहज जी नहीं सकता, अहंकार शांत जी नहीं सकता। उसको अपने जीने के लिए शत्रुओं का निर्माण करना पड़ता है।

भीतर हमारे घोर संघर्ष चल रहा होता है, इस कारण बाहर हमें तमाम शत्रु खड़े करने पड़ते हैं। शत्रुता पहले भीतर होती है, फिर शत्रु बाहर अपनेआप

प्रकट हो जाता है। प्रकट नहीं होता, हम उसको निर्मित करते हैं। बाहर एक शत्रु निर्मित करना आवश्यक है।

माया समझ में आ रही है? और जो मेरे पूज्य हैं, कबीर साहब, मैं बिल्कुल झूम उठा था – आज से पंद्रह साल पहले की बात होगी – माया विषय पर पढ़ चुका था काफ़ी, और पढ़ने की कोशिश करता रहता था, कि क्या है। तो एक दिन आते हैं, मुझसे बोलते हैं, ‘जो मन से न उतरे, माया कहिए सोय।’ और सब निपट गया, समाप्त।

सैकड़ों पन्ने पढ़ डाले थे, शायद हज़ारों; सिर्फ़ माया को जानने के लिए। इन्होंने (कबीर साहब ने) आकर के पाँच-सात शब्दों में सब समेट दिया, किताब ही बंद कर दी।

‘माया माया सब कहे, माया लखे न कोय। जो मन से न उतरे, माया कहिये सोय।’

~ कबीर साहब

जो तुम्हारे खोपड़े में लगातार घूमता रहता है न, उसको ही माया बोलते हैं। जो कुछ भी तुम्हारे सर पर सवार है उसको माया बोलते हैं। जिसका भी बड़ा ध्यान करे रहते हो, उसको ही माया बोलते हैं।

‘नहीं, पर हम तो बहुत अच्छी-अच्छी बातें सोचते हैं।’ वो अच्छी-अच्छी बातें ही माया हैं। ‘हम तो अपने निकट सम्बन्धियों और प्रियजनों के विषय में विचार करते हैं।’ वही माया है। ‘हम धार्मिक आदमी हैं, हम तो अपने ईश्वर का ख्याल करते हैं।’ माया है माया, और कुछ नहीं। तुम्हारे ही द्वारा कल्पित है न, तो माया है।

इसलिए ऋषियों ने आपसे कहा, 'ईश्वर नहीं, ब्रह्म।' ब्रह्म आपके द्वारा कल्पित नहीं है इसीलिए ब्रह्म की कोई परिभाषा नहीं हो सकती, इसलिए ब्रह्म निर्गुण होता है। ईश्वर को लेकर के, भगवान को लेकर के तो आपने बहुत बातें बोल दीं। वो बातें सब किसने बोली? आपने बोली न। जो कुछ भी आप बोलेंगे वो आपका है। जो आपका है, वो आपसे बड़ा कैसे हो सकता है? आपसे ऊँचा, आपसे शुद्ध कैसे हो सकता है? ब्रह्म आपका नहीं है। ब्रह्म की परिभाषा यही है, जो आपका नहीं है उसे ब्रह्म बोलते हैं।

इसीलिए उसको कहते हैं 'परम'। परम के दो अर्थ होते हैं – सबसे ऊँचा, और पराया, पर। जो पराया है वही सबसे ऊँचा है। जो आपका है, वो बहुत नीचा है। लेकिन हमारे देखे जो हमारा है, वही प्यारा है।

और ऋषि कुछ और ही समझा रहे थे, वो कह रहे थे, 'जो आपका है वही आपका रोग है, वही आपका काल है।' जो पर है, जो परम है, तुम उसके हो जाओ न। 'पर वो तो पराया है उसके कैसे हो जाएँ?' जब तक तुम उसके नहीं हो, वो पराया है। वो पराया इसलिए है क्योंकि तुम उससे पराये हो।

वेदान्त का मूल प्रश्न क्या है? 'किसके लिए?' वो पराया है, किसके लिए? अरे! हमसे पराया है न।

वो परायापन उसकी तरफ़ से है या हमारी तरफ़ से है?

श्रोतागण: हमारी तरफ़ से।

आचार्य: ओ! तो उसे पराया किसने बना रखा है? तो फिर समर्पण भी किसको करना है? समस्त अध्यात्म का फिर कुल उद्देश्य होता है –

अहंकार का समर्पण ताकि ये परायापन मिटे। उसी को फिर योग कहते हैं। परायापन मिट गया, वियोग हट गया, योग हो गया, परम मिल गया।

उसी एक सत्य को परम भी कहते हैं, ब्रह्म भी कहते हैं, सत्य, आत्मा भी कहते हैं। और जब बहुत ज़ोर से बोलना होता है, ज़्यादा दबाव देकर के बोलना होता है तो परम और आत्मा को जोड़ देते हैं आपस में। एक ही बात है, उसको दोहरा देते हैं। तो परम और आत्मा जुड़ गए तो?

श्रोतागण: परमात्मा।

आचार्य: और परम और ब्रह्म जुड़ गए तो?

श्रोतागण: परमब्रह्म।

आचार्य: और परम और सत्य जुड़ गए तो?

श्रोतागण: परमसत्य।

आचार्य: उनको जोड़ने की कोई ज़रूरत नहीं पर जोड़ भी दो तो कोई बुराई भी नहीं है। वो एक ही हैं।

जैसे आप किसी को बोलें, 'यहाँ आओ', फिर बोलें, '*कम हियर*', फिर बोलें, 'इस तरफ़'। सब एक ही बात हैं न? कई बार लेकिन आप चाहते हो ज़ोर देकर बोलना, *डबल एम्फेसिस* के साथ बोलना तो फिर आप कह देते हो 'परमात्मा'। परमात्मा और आत्मा कुछ अलग नहीं होते, वो एक ही बात है। बात समझ में आ रही है?

कुल मिलाकर के माया का ताल्लुक किससे है? 'जो मन से न उतरे, माया कहिए सोय।' किसका मन?

श्रोतागण: मेरा।

आचार्य: तो माया क्या?

श्रोतागण: मैं माया हूँ।

आचार्य: मुक्ति किससे चाहिए होती है?

स्वयं से, अपने आग्रहों से, अपने विश्वास से। जो कुछ आप मानकर बैठे हैं उसी से मुक्ति चाहिए और कुछ थोड़े ही। जगत् से थोड़े ही मुक्ति चाहिए होती है।

जगत् क्या है? जगत् आपकी छाया है। आप जैसे हैं, आपका जगत् वैसा है, उससे क्या मुक्ति माँगेंगे आप? आपको अपने होने से मुक्ति चाहिए, वही है माया से मुक्ति।

देखिए, अध्यात्म अध्यात्म नहीं है अगर वो दुनियादारी की बात करना शुरू कर दे, फिर वो बाज़ारू हो गया। दुनियादारी बाज़ारों में चलती है। धर्म के नाम पर, अध्यात्म के नाम पर कहीं भी आप पाएँ कि इधर-उधर की बातें ज़्यादा हो रहीं हैं, ये चीज़, फ़लानी चीज़, फ़लानी क्रिया, फ़लाना काम, फ़लाना फल, फ़लानी सब्जी, फ़लानी जगह, फ़लाना पानी, फ़लाना पत्थर तो वो बात धार्मिक नहीं है। धर्म का सम्बन्ध मात्र और मात्र आपके अंतःकरण से है।

दुनियादारी की जगह कहाँ है? बाज़ारों में।

खेद की बात ये है कि अध्यात्म भी क्या बन चुका है?

श्रोतागण: बाज़ार।

आचार्य: बाज़ार में लेनदेन होता है न, अच्छा लगता है। आशा रहती है जेब में कुछ आ जाएगा। अध्यात्म आपकी जेब भरने के लिए नहीं है, अध्यात्म आपको स्वयं से खाली करने के लिए है। पहली बात तो जेब से उसका कोई ताल्लुक नहीं, जेब माने बाहरी चीज़। पहली बात तो जेब से कोई सम्बन्ध नहीं, दूसरी बात भरने से कोई नाता नहीं उसका। अध्यात्म भरने के लिए नहीं होता, खाली करने के लिए होता है। मुझे मुझसे खाली कर दे – यही प्रार्थना है। मुझे मुझी से बचा ले – यही प्रार्थना है। मेरी दृष्टि को अंतर्मुखी, अंतर्गामी कर दे – यही प्रार्थना है। मुझे वैसा नहीं रहना मैं जैसा बन बैठा हूँ, यही प्रार्थना है।

अब चलिए और रोचक बनाते हैं चीज़ों को। तो जिन्होंने मुझसे कहा कि ‘जो मन से न उतरे माया कहिए सोय।’ उन्होंने ही फिर एक दिन आकर कह दिया कि ‘माया दो प्रकार की जो जाने सो खाय, एक मिलावे राम से दूजी नरक ले जाए।’ ये क्या बात हो गई? वही गाते रहते थे, ‘माया महा ठगनी हम जानी, और शिव के घर शिवानी, तीरथ में भई पानी, ब्रह्मा के घर ब्रह्माणी।’ और अब कह रहे हैं, माया दो प्रकार की है। माया ही राम से भी मिलाती है, और माया ही नरक भी ले जाती है।

ये दो प्रकार की माया क्या होती हैं? (श्रोताओं से प्रश्न करते हैं) कुछ नहीं समझ रहे हैं न, कुछ नहीं सीख रहे? माया माने? मैं। तो दो प्रकार की माया माने? दो प्रकार का?

श्रोतागण: अहंकार।

आचार्य: हाँ, बस यही है। अहंकार गति लगातार करता रहता है, अहंकार गति में जीता है न इसीलिए तो घड़ी टिक-टिक-टिक-टिक करती रहती है न। इसीलिए तो धड़कन धक-धक-धक-धक करती रहती है न, वो गति है।

अहंकार लगातार क्या कर रहा है? गति कर रहा है। तो गति दो दिशाओं में हो सकती है। एक गति हो सकती है अपने ही प्रक्षेपण, अपनी ही कल्पनाओं की ओर, माने संसार की ओर। वो बहिर्मुखी अहंकार है जो कि निन्न्यानवे दशमलव नौ-नौ प्रतिशत लोगों का होता है, उसे बाहर जाना है। और एक अहंकार हो सकता है, जो कह रहा है, 'बाहर जाकर कुछ मिलता नहीं।' क्या मुझे बाहर कुछ ऐसा मिल सकता है जो मुझे बाहर से मुक्ति दिला दे?

श्रोतागण: न।

आचार्य: न, न मना मत करिए। ये दूसरे तरह का अहंकार है, ये राम से मिलाता है क्योंकि आप जो भी गति करेंगे, आप कहाँ करेंगे? करेंगे तो इसी जगत् में न। जिससे भी मिलेंगे जगत् में ही मिलेंगे। तो ये जो दूजी प्रकार की माया है, जो राम से मिलाती है, ये कह रही है, 'इसी दुनिया में मुक्ति के दरवाज़े भी मौजूद हैं।' पर वैसा दरवाज़ा हजार दरवाज़ों को खटखटाने के बाद खुलता है। क्या है तुममें इतनी मुमुक्षा, इतना प्रेम कि दुनिया को लगातार ठुकराते रहो, जब तक दुनिया में एक वो न मिल जाए जो प्यार के लायक है? ये वो माया है जो राम से मिलाती है। समझ में आ रही है बात?

संसार में अवस्थित तो अपने-आपको हम मानते ही हैं न? या मेरे बस बोल देने से ऐसा लगेगा कि 'नहीं, दुनिया है ही नहीं, ये तो बस मेरे द्वारा ही रचा हुआ मकड़जाल है'? वेदान्त में ऐसे ही बोलते हैं। कई बार ऐसा होता है

कि मकड़ी अपने ही द्वारा रचे गए जाल में फँस जाती है, व्यक्ति वैसे ही अपने द्वारा प्रक्षेपित जगत् में फँसा हुआ जीवनभर दुख पाता है।

और एक बहुत संक्षिप्त-सा बौद्ध ग्रंथ है – ‘शून्यतः सप्तति’ तो उसके रचयिता नागार्जुन, वो इसको ऐसे बोलते हैं कि जैसे कि कोई चित्रकार हो, वो दीवार पर एक बड़ा भयानक चित्र बनाए और फिर स्वयं ही उस चित्र को देखकर डर जाए – ऐसे हम हैं। हम खुद ही रचते हैं अपनी दुनिया और फिर अपने द्वारा ही रची दुनिया के शिकार हो जाते हैं। समझ में आ रही है बात?

दुनिया में ही मुक्ति का साधन भी मिलेगा लेकिन ‘मैं’ को पहले मुक्तिमुखी होना पड़ेगा। आपके हाथ में है, आप कैसे रचते हैं। एक प्रकार से माया आपको बड़ी ताकत भी देती है, माया आपको चुनाव का अधिकार देती है न। जगत् में सबकुछ है; तुम्हारे लिए क्या है, ये तुम चुनो। ठीक वैसे ही जैसे आप बाज़ार-दुकान जाते हैं, आप चुनते हो न आपके लिए क्या है, सबकुछ थोड़े ही उठा लाते हो।

जिन्होंने जाना है, उन्होंने हमसे कहा है कि तुम आजतक जो भी उठाकर लाए अपने लिए सब ग़लत ही उठाकर लाए हो और उसका कुल प्रमाण है तुम्हारी आज की हालत। लेकिन देर कभी नहीं हुई है, आज भी नए चुनाव कर सकते हो। सही चुनाव कौनसा है? जो मुक्ति की ओर ले जाए।

और ये बड़ी जादुई बात है कि ये जो जगत् है, इसी जगत् में ऐसे सहायक तत्व मौजूद हैं जो जगत् से मुक्ति दिला देते हैं। ऐसे समझिए कि जैसे आप कहीं जाएँ, आप एक शॉपिंग मॉल गए, वहाँ बहुत-कुछ है। ज़्यादातर वहाँ जो है, वहाँ वो वैसे ही है जो आपको और बाँध लेगा। क्योंकि वो चीज़ ग़लत नहीं है, हमारी नज़र ग़लत है। हम उसका इस्तेमाल बँधने के लिए

ही करना चाहते हैं। फिर उसी मॉल में एक किताबों की दुकान है, वहाँ मान लीजिए तीन हजार किताबें रखी हैं। तीन हजार में से अठ्ठाईस सौ, उनतीस सौ किताबें ऐसी हैं जो आपको बर्बाद ही कर देंगी।

और उसी किताबों की दुकान में उपनिषद् भी मौजूद हैं, गीता भी मौजूद है। वो सबसे आगे नहीं रखे जाते वो बिकते नहीं हैं न, लोगों को चाहिए नहीं। जो किताबों की प्रदर्शनी करी जाती है, वो जो दराज़ में किताबें सजाई जाती हैं, उनमें आपने कभी उपनिषद् रखे देखे? वहाँ देखा है क्या फूहड़ सामग्री रखी होती है? लेकिन होते हैं, अंदर रखे होते हैं। कहीं-न-कहीं आपको गीता की एक प्रति मिल ही जाएगी। वही शॉपिंग मॉल जो आपको बर्बाद कर सकती थी, हो सकता है कि वहीं से आप गीता लेकर के लौटें। माया दो प्रकार की, वही शॉपिंग मॉल आपको राम से भी मिला सकती है। समझ में आ रही है बात? लेकिन खोजना पड़ता है; नीयत! नीयत! नीयत! इरादा, कामना क्या है? चाह क्या रहे हो?

अहंकार तो हम हैं ही। अभी यहाँ मंच से कौन बोल रहा है? अहंकार बोल रहा है। वहाँ सामने श्रोताओं में कौन है? अहंकार है। अहंकार बोल रहा है, अहंकार सुन रहा है। दिशा क्या है अहंकार की? जगमुखी है? बंधमुखी है? या मुक्तिमुखी है? और सिर्फ वही एक चीज़ है जो हमारे हाथ में है, और कुछ भी नहीं है। चुनो न किसको देखना है, चुनो न प्रेम किससे है, चुनाव करो। उधर भी देख सकते हो, इधर भी देख सकते हो। जानो तुम्हारे लिए क्या बेहतर है। इसी माया के बीचोंबीच रास्ता निकलता है मुक्ति का भी।

नदी बाधा होती है न, और अध्यात्म में नदी का प्रतीक बहुत इस्तेमाल किया जाता है कि डूब जाओगे, इस तट से उस तट जाना है। मँझधार है, नाव बेकार है, और बेहोश खेवनहार है – यह सब कहा जाता है न? लेकिन वही जो पानी है, वो उस पार जाने में मदद भी कर देता है अगर नीयत

हो। अगर सही चप्पू चलाओ या सही तरीके से तैर जाओ। जब आप तैर रहे हो – आपने कभी सोचा है जब आप तैर रहे हो तो आपकी मदद कौन करता है? कौन मदद करता है?

श्रोतागण: पानी।

आचार्य: पानी ही आपकी मदद कर रहा है। वही पानी जो आपको डुबो भी सकता है, वही पानी *बाँयंसी* के कारण आपकी मदद भी करता है, पानी में आप हल्के हो जाते हो। जब पानी में आप हल्के हो जाते हो तो अपने-आपको आगे फेंकने के लिए हाथ-पाँव का चप्पू चलाते हो न, तैरने में कम श्रम करना पड़ता है। पानी जितना भारी होता है, उसमें तैरना उतना आसान। माया नदी के पानी की तरह है। आपको ये भवसागर पार करना है, और पार करने में सहायता भी आपकी पानी ही करेगा। जगत् में आप मुक्ति हेतु हैं लेकिन मुक्ति भी जगत् की सहायता से ही मिलेगी। जगत् को दुश्मन मत मान लीजिएगा।

भारत ने बड़ा नुकसान उठाया है, पूरी ज़िन्दगी को ही, पूरी दुनिया को ही परित्यक्त बना करके। यहाँ हर आदमी के दिल में एक सन्यासी बैठा है। जिसको हम अपनी सुविधानुसार जागृत करते हैं। ऐसा नहीं कि वो हर समय जागृत है, जब सुविधा लगती है तो हम सन्यासी हो जाते हैं। ये सब कहते हैं, 'क्या रखा है? मोह माया है!' कुछ काम ठीक से किया नहीं, आलस करा, मेहनत नहीं करी, जब पिट गए तो – 'सब मोह माया है, कुछ नहीं!'

नहीं, जगत् के प्रति बड़ा सकारात्मक भाव रखना है। जगत् ही राम से मिलाएगा। राम माने मुक्ति। जहाँ तक हमारी बात है, हम तो अपने-आपको शरीर ही जानते हैं न? शरीर ने इसी दुनिया में जन्म लिया है, यहीं जिएगा यहीं मरेगा शरीर; शरीर ऐसा ही है। तो मुक्ति भी उसे इस दुनिया के ही

माध्यम से मिलेगी। तलाशो कि दुनिया में क्या है जिसमें सत्य है, जिसमें सौन्दर्य है, जो आपका हाथ अगर थामेगा तो आपको डुबोएगा नहीं, आपको तैरना सिखा देगा।

यह जीने की विधि ही हो गई। माया पर चर्चा शुरू हुई और बात यहाँ पर आ गई। तलाशो! तलाशो! दुनिया में क्या है जो उत्कृष्ट है, सर्वश्रेष्ठ है, जिसमें सत्य है, जिसमें शिवत्व है, उसको तलाशो, लगातार तलाशते रहो और एक बार वो मिल जाए तो एकदम ज़ोर से पकड़ लो, जैसे बच्चा माँ को पकड़ लेता है। चार घंटे से मिल नहीं रही थी फिर मिल गई। फिर देखा है क्या करता है? रोता है; ऐसे पकड़ लो। पहले तो उसका मिलना मुश्किल, न जाने किस संयोग से, किस सौभाग्य से वो चीज़ मिल जाए और उसके बाद उसको गँवा दो तो कोई माफ़ी नहीं है फिर।

साधना यही है, पाते जाओ बचाते जाओ। पा तो आप लेते हैं, बचाते नहीं। हम यहाँ तीन दिन बातचीत करेंगे और मेरे लिए मुझे मालूम नहीं, शायद मेरा दो-सौवाँ शिविर होगा। बहुत हुए हैं जो क्षणांश को मुक्त हो गए। चढ़ गए बिलकुल शिखर पर, हिमालय की चोटी पर, और फिर वहाँ से धड़ाम से गिरे।

तो पहले मैं कहता था, 'पाते जाओ, गाते जाओ।' फिर मुझे समझ में आया कि ये गाएँगे तो तब न जब कुछ बचा होगा गाने के लिए। यहाँ तो ऐसा है कि जैसे छलनी में पानी डाला जा रहा हो। तो गाएँ कहाँ से बेचारे, कुछ बचता ही नहीं। तो अब कहता हूँ – पाओ और बचाओ। अगर वास्तव में कुछ मिल रहा है तो उस पर ठहर जाओ न, कुछ पौरुष दिखाओ।

मैच में एक बार आप देख लेते हो किसी के हाथ में कैच आ रहा था, और वो कैच हाथ से उचक गया... दे गाली! और हम ऐसे हैं कि हमारे हाथों से

जिंदगी प्रतिपल रेत की तरह फिसलती रहती है और हम कभी अपने-आपको दोषी नहीं जानते।

पाओ और बचाओ।

एक पल देखिए आना है ऐसा जब पाने की संभावना भी समाप्त हो जाएगी। और कोई नहीं जानता वो पल कब आता है। आज ही है कि चीन से शुरू हुई बीमारी अब फिर बड़ी लहरों के साथ पूरी दुनिया पर छाने वाली है, और फिर आँकड़े वही हैं; सौ, दो सौ, चार सौ वाले नहीं, लाखों और मिलियंस वाले आँकड़े आ रहे हैं; नहीं जानते कितने सच हैं और कितने झूठ। पर कोविड नहीं होगा तो कुछ और होगा, क्या पता क्या होगा! एक पल तो आता है न जिसके बाद कोई पल नहीं आता। उससे पहले पकड़ लो।

प्र२: भगवान श्री प्रणाम, अभी जो चर्चा हुई कि तथ्य जो है लोकतांत्रिक है। जैसे सब ने कह दिया कि ये है, तो माया हो गया। अभी पीछे भी चर्चा हुई थी तो आपने कहा था, तथ्य सत्य का द्वार है। और कृष्णमूर्ति साहब भी फैक्ट्स (तथ्य) पर बहुत कहते हैं कि फैक्ट देखो! फैक्ट देखो! तो वो?

आचार्य: तीन तल बताए न। सबसे नीचे कौनसा तल है?

प्र२: कल्पना।

आचार्य: सबसे ऊपर क्या है?

प्र२: सत्य।

आचार्य: बीच में क्या है?

प्र२: तथ्य।

आचार्य: तो तथ्यों पर जाने के लिए किसको प्रेरित किया जा रहा है? जो सत्य पर बैठा है उसको?

प्र२: कल्पना पर जो बैठा है उसको।

आचार्य: बस इसीलिए, इसीलिए तो ये नहीं कह दिया न कि तथ्य सत्य है। कहा तथ्य सत्य का...?

प्र२: द्वार है।

आचार्य: द्वार मात्र कहा है, सत्य नहीं कह दिया। द्वार मात्र है, और आप यहाँ (नीचे) से यहाँ (ऊपर) आए हो अब यह जगह द्वार बन गई न ऊपर और जाने का। तो तथ्य उनके लिए बहुत आवश्यक हो जाते हैं जो कल्पनाओं में जीते हैं। और ज़्यादातर लोग कल्पनाओं, धारणाओं, मान्यताओं में ही तो जीते हैं। कभी वो उसको अपने विश्वास का नाम देते हैं, कभी वो उसको आस्था का नाम देते हैं; वो होता कुछ नहीं है, वो बस एक व्यक्तिगत सपना है। सपने में तो आप कुछ भी देख सकते हो, उसका क्या भरोसा? और उसका क्या महत्व? पर ज़्यादातर लोग हममें से एक व्यक्तिगत विश्व में रहते हैं, अपनी ही दुनिया में। ऐसी दुनिया जिसके केंद्र पर परम नहीं बैठा है, कौन बैठा है?

प्र: अहम्।

आचार्य: अहम् बैठा है। तो उनको कहा जाता है कि ये निचले तल से उठकर के कम-से-कम मध्यम तल पर तो आओ। मध्यम तल है तथ्यों का। ज़्यादातर लोग तथ्यों के तल पर भी नहीं जीते। इसीलिए *ऑब्जेक्टिविटी* (वस्तुनिष्ठता) भी एक बड़ी बात, एक ऊँचा सदगुण माना जाता है। ज़्यादातर लोग *ऑब्जेक्टिव* कहाँ हो पाते हैं। हालाँकि वेदान्त *ऑब्जेक्टिविटी* की बात एकदम नहीं करता। वेदान्त कहता है – *प्योर सब्जेक्टिविटी* (शुद्ध दृष्टाकेंद्रित)। लेकिन एक *पर्सनल सब्जेक्टिविटी* से कहीं अच्छी है *ऑब्जेक्टिविटी*। समझ में आ रही बात, या उलझ रहा है दिमाग में?

हममें से ज़्यादातर लोग किस तल पर जीते हैं?

प्र: कल्पना के तल पर।

आचार्य: उसको मैं कह रहा हूँ, *पर्सनल सब्जेक्टिविटी*। वो है पागल, विक्षिप्त अहंकार। वही जैसे पागलखाने की बात करी थी न, वहाँ हर आदमी अपनी दुनिया में है। एक के पास जाओगे वो बैठकर ऐसे-ऐसे (नोट गिन) कर रहा है। क्या कह रहा है? 'नोट गिन रहा हूँ, मैं सेठ हूँ।' वो सेठ निश्चिरूप से है, किसके लिए? बस अपने लिए। क्या वो झूठ बोल रहा है? नहीं, वो झूठ नहीं बोल रहा, वो सेठ है। आपको धोखा नहीं देना चाहता, उसको सचमुच लगता है वो सेठ है, पर वो सेठ किसके लिए है? वो अपने लिए है। ये क्या है? *पर्सनल सब्जेक्टिविटी*, ज़्यादातर लोग उसमें जीते हैं। उनके लिए जो कुछ है – 'मेरे लिए है, मेरे लिए है।' हर आदमी ऐसा ही है कि नहीं है, ऐसा है कि नहीं है? है।

आपमें से कितनों को लगता है कि जीवन ने, तकदीर ने आपके साथ नाइंसाफी करी है? अरे! दिल से, चलिए मुझे तो लगता है (अपना हाथ खड़ा

करते हुए) अब बताइए? लगता है न हम सबको, यही *पर्सनल सब्जेक्टिविटी* है। 'मैं तो महान हूँ, वो तो जीवन में मेरे साथ कुछ अनायास दुर्घटनाएँ वगैरह हो गई हैं, कुछ अन्याय हो गए नहीं तो मैं पता नहीं क्या होता, पता नहीं क्या होता।'

मैं आइआइटी पहुँचा, वहाँ बड़ा मज़ा आया। जिससे भी थोड़ी घनिष्ठता होने लगती, वो ये बोल ही देता कि वो तो उस दिन पेपर खराब हो गया, नहीं तो जेई-वन रैंक तो मेरी थी। वहाँ एक भी ऐसा नहीं था जो जेई-वन ही नहीं था। कहाँ? अपनी नज़र में जेई-वन हर कोई था, मैं भी था।

कहते हैं, 'देख तू बिल्कुल ठीक बोल रहा है, तू बहुत प्रतिभावान है, तेरे जैसा कोई हो नहीं सकता पर तू जेई-वन नहीं तू जेई-टू होता, क्योंकि...?'

श्रोतागण: वन तो मैं हूँ।

(सब हँसते हैं)

आचार्य: और वहाँ जो बैठा है उसकी डेढ़ हज़ार रैंक है, और यहाँ (स्वयं की ओर इंगित करते हुए) जो बैठा उसकी आठ सौ रैंक है। अपनी-अपनी नज़र में सब बादशाह हैं, हैं कि नहीं हैं?

किसी को भी अपनी सच्चाई पता है क्या? आध्यात्मिक सवाल नहीं है ये, एकदम ज़मीनी बात पूछ रहा हूँ। किसी को भी अपनी सच्चाई पता है क्या? तो हम तथ्यों में भी नहीं जीते, हम फैक्ट्स में नहीं जीते। किसी से उसका कद पूछो, हो नहीं सकता कि वो दो इंच बढ़ाकर न बताए। और किसी से उसका वज़न पूछो, हो नहीं सकता दो किलो गिराकर न बताए। और सौ बार जब आप झूठ बोल लेते हो तो आपको सचमुच लगने लगता

है कि आपका कद वास्तव में पाँच-दस है। ‘पाँच-दस! तू पाँच-दस हो ही नहीं सकता’, क्यों? ‘क्योंकि तू मुझसे कम-से-कम चार इंच नीचे है, और मैं तो छः फुट हूँ। मैं छः फुट हूँ, मुझे देखो मैं छः फुट, और तू मुझसे चार इंच नीचे होगा ही, तो तू पाँच-दस नहीं हो सकता।’

माने झूठ को काटने के लिए भी एक दूसरे झूठ का सहारा लेते हैं हम। ये भी नहीं कि हमें पता हो कि सच क्या है और सच के संदर्भ में किसी बात को झूठ बोलते हों। हम झूठ भी झूठ के ही संदर्भ में पकड़ते हैं, हम ऐसे झूठे हैं। तो फैक्ट्स भी हमारे लिए बड़ी विरल उपलब्धि है, हम फैक्ट्स में भी नहीं जी पाते। कभी-कभार किसी की ज़िंदगी में वो पल आता है, जब वो निरपेक्ष होकर अपने जीवन को देखकर कह पाता है, ‘देखो बड़ी फ़ीकी-सी है मेरी कहानी। सच तो ये है कि कुछ करा नहीं, कुछ पाया नहीं, कुछ जिया नहीं और ज़िम्मेदार सिर्फ़ मैं हूँ – इस पल से अध्यात्म की शुरुआत होती है। टोने-टोटके, झाड़-फूक, पूजा-अर्चना से नहीं; व्यक्तिगत, निष्पक्ष, ईमानदारी के एक पल से अध्यात्म की शुरुआत होती है। समझ में आ रही है बात?

और जो तथ्यों में जीने लग गया, सत्य अब उसके लिए दूर है ही नहीं। तो कुल बात वास्तव में कल्पना से उठकर तथ्य पर आने की है। उसके आगे का काम हमें ऋषियों ने बताया है कि अपनेआप होता है। याद है न, उसके आगे के काम को क्या बोलते हैं? अनुग्रह, ग्रेस, वो अपनेआप होता है। लेकिन इमैजिनेशन से फैक्ट्स पर आने का काम आपको खुद करना पड़ता है और उसमें बड़ी चोट लगती है, खुद को तोड़ना पड़ता है।

आप तथ्यों में जीना शुरू कर दीजिए, सत्य के द्वार स्वयमेव खुल जाते हैं। सत्य कोई उपलब्धि नहीं होती, सत्य को आप हाथ बढ़ाकर प्राप्त नहीं कर पाएँगे। पर तथ्य को आप प्राप्त कर सकते हैं। आप इतना ही करिए,

आपका बस यही कर्तव्य है। आप तथ्यों में जीना शुरू करिए। इसीलिए मैं जिज्ञासा पर इतना ज़ोर देता हूँ। मैं कहता हूँ, आप जो भी कह रहे हैं, आपको कैसे पता वो सच है? आपने कितनी छानबीन करी? आपने भीतर कितनी तलाश करी? आपने बाहर भी कितनी तलाश करी? भीतरी तलाश का तो चलो कुछ पता नहीं, आपने बाहर गूगल भी करा ठीक से क्या? या बस कोई मान्यता बनाकर बैठे हो?

आज की दुनिया में तथ्य छिपे हुए नहीं हैं, ये सूचना-प्रौद्योगिकी का युग है न। आप जो जानना चाहो जान सकते हो। मैं आपको यकीन के साथ बोलूँ, आप जाँच लीजिएगा, हो सकता है मैं झूठ बोल रहा हूँ या ग़लत बोल रहा हूँ। जो आपकी बहुत केंद्रीय और ठोस मान्यताएँ होंगी, अपने बारे में, दुनिया के बारे में, जीवन के बारे में, उनको लिखिएगा पहले ताकि फिर झूठ न बोल पाएँ। लिख लीजिएगा दस, और फिर उनकी छानबीन करिएगा। दस में से सात या आठ ग़लत निकलेंगी, एकदम ग़लत।

हमें तथ्य ही नहीं पता हैं। मैं साधारण तथ्यों की बात कर रहा हूँ, आँकड़े हमें नहीं पता। लेकिन हमें यकीन पूरा है, कॉन्फिडेंस पूरा है। और मायावी आदमी की ये पहचान आप हमेशा पाएँगे, उसमें ये पूरा होगा, 'हम बताते हैं न, हमें सब पता है।'

माया जिस दिन थोड़ी विनम्र हो जाए उस दिन उसका अंत शुरू हो जाता है – ये एक चीज़ है जो आप माया में नहीं पाएँगे। उसकी ज़िन्दगी के लिए, उसके अस्तित्व, उसके बचे रहने के लिए ज़रूरी है कि उसमें एक अकड़ हो। जिसको आजकल नाम दिया जाता है आत्मविश्वास का।

ये जो आत्मविश्वास है – आत्म ही क्या है? मैं। तो आत्मविश्वास माने? झूठ पर विश्वास को आत्मविश्वास बोलते हैं। अपने झूठ पर विश्वास को

आत्मविश्वास बोलते हैं। संतों को आप आत्मविश्वासी नहीं बोलेंगे। आपने कभी छवि देखी हैं – नानक साहब का चित्र होता है, या कबीर साहब का देख लीजिए – जैसा उनको छवियों में भी चित्रित करा जाता है आपको लगता है कॉन्फिडेंट लोग हैं? आप ये भी नहीं कहेंगे कि उनमें *लैक ऑफ़ कॉन्फिडेंस* है, आत्मविश्वास की कमी है। वो भी नहीं कहेंगे, पर उनको देखकर ये तो नहीं बोलेंगे, 'ये बन्दा बड़ा कॉन्फिडेंट है।' ऐसा तो कुछ ख्याल आता नहीं, कि आता है?

लेकिन आजकल जिनको आप सफल मानते हैं, ऊँचा मानते हैं, उनको आप देखिएगा ऐसे (अकड़ में बैठने का अभिनय करते हुए) '*ऑस्क मी आई टेल यू* (मुझे पूछो मैं बताता हूँ)' – ये माया है। समझ में आ रही है बात?

और ये माया का लक्षण नहीं है, ये माया की मजबूरी है क्योंकि विनम्रता, हमने कहा, माया का अंत होती है। माया को अगर ज़िंदा रहना है तो उसे आत्मविश्वास दर्शाना होगा, माया विनम्र हो गई तो मर जाएगी। विनम्र होने का अर्थ होगा स्वयं पर प्रश्नचिन्ह लगा पाना। स्वयं पर सवाल किया तो जो उत्तर आएगा वो विगलन की ओर ले जाएगा, समाप्ति की ओर ले जाएगा। वो समाप्ति कोई बुरी बात नहीं है, डर मत जाइए। उस समाप्ति से जीवन शुरू होता है।

हम सपने में हैं, जानने वालों ने कहा है, 'हम सपने में भी नहीं हैं, हम अभी गर्भ में हैं, हम पैदा होने की प्रतीक्षा में हैं।' हम पैदा क्यों नहीं हो पा रहे?

क्योंकि हमको लग रहा है हम पैदा हो चुके।

(सभी हँसते हैं)

हम जी क्यों नहीं रहे? क्योंकि हमको लगता है हम जी रहे हैं। जिसको दिख जाए कि आप जी ही नहीं रहे, बस एक यंत्रवत प्रक्रिया है, एक झूठ है, एक मुर्दा अस्तित्व है, वो समाप्त हो जाता है। वो समाप्त हो जाता है, माने क्या समाप्त हो जाता है? उसका मुर्दा होना समाप्त हो जाता है। जब वो मुर्दा नहीं रहा तो वो जी उठा।

इसलिए एक ईमानदार आदमी में तथ्यों के लिए आप बड़ी रुचि पाएँगे। मैं यहाँ तक कहने को तैयार हूँ कि वो तथ्यों को सेक्रेड मानेगा, पवित्र। वो बात-बात पर जाँचेगा। वो विश्वास में नहीं जिएगा। नहीं कहेगा, 'हमारा ऐसा विश्वास है जी, हमारी तरफ़ ऐसा मानते हैं, तो मैं भी ऐसा मानता हूँ।' नहीं, वो कदम-कदम पर परखेगा, जिज्ञासा करेगा। ये आध्यात्मिक आदमी का लक्षण है – जीवन के प्रति एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण।

मैं यूँ ही कुछ नहीं मान लेता; मैं परखता हूँ, मैं जाँचता हूँ, मैं पूछता हूँ, मैं तुलना करता हूँ, मैं अन्वेषण करता हूँ, मैं गहराइयों का शोधक हूँ – ये वैज्ञानिक दृष्टि अध्यात्म के केंद्र में है बिल्कुल। जो जगत् के प्रति वैज्ञानिक नहीं है, वो स्वयं के प्रति आध्यात्मिक नहीं हो सकता। जो जगत् में अंधविश्वासी है, वो भीतर बड़ा अहंकारी होगा। असल में अहंकार का एक बड़े-से-बड़ा लक्षण होता है अंधविश्वास। और हमारे युग का ये दुर्भाग्य है कि हमने अंधविश्वास को धर्म के साथ जोड़ दिया। जो धार्मिक नहीं होता सिर्फ़ वही अंधविश्वासी होता है। जो धार्मिक होगा, माने सच्चे अर्थों में जो आध्यात्मिक होगा वो तो वैज्ञानिक होगा।

अंधविश्वास का क्या अर्थ है? 'मुझे अपनी मान्यता में जीना है साहब! मान्यता है, हम मानते हैं।' पर ऐसे क्यों हो? ये नीबू-मिर्ची क्या है? 'नहीं हम ऐसा मानते हैं।' कौन मानता है? 'मैं।' और वो कह रहा है, 'मुझे जाँचना नहीं है, मैं ही सत्य हूँ न, मैं ही बादशाह हूँ। तो मैं मानता हूँ, तो सच है। मैं

जाँचू क्यों? साहब, मैं कौन हूँ? मैं बादशाह हूँ। तो मैं फ़लानी चीज़ को मानता हूँ, तो मेरे मानने के कारण वो बात सच हो गई। वो बात सच है या नहीं, ये नहीं है प्रयोजन; मैं मानता हूँ, तो सच हो गई।' अंधविश्वास अहंकार की ठोस निशानी है।

और अन्वेषण और खोजी की नज़र और जिज्ञासु होना और वैज्ञानिक दृष्टि रखना ये आध्यात्मिक आदमी की निशानी है। जिसको देखें कि उसको कुछ बोलें और वो बस मान ले, ये आदमी अहंकारी है। ये अहंकारी लेकिन लगेगा नहीं। आप कहेंगे, 'ये देखो, ये तो भला आदमी है, कितना भोला, जो पट्टी पढ़ाई, पढ़ ली।' नहीं, ये अहंकारी है, इसे 'मैं' को बचाना है।

और जिसको आप कुछ बताएँ और पाँच सवाल करे, एक-के-बाद-एक करता ही जा रहा है, करता ही जा रहा है, वो आपको लगेगा कि ये अक्खड़ आदमी है, क्या रूखा आदमी है। 'यार! बता दिया मान ले न, प्रश्न-प्रतिप्रश्न करे ही जा रहा है।' आप चिढ़ जाएँगे, आप चिढ़िए मत। उसे सच्चाई से प्यार है इसलिए बार-बार पूछ रहा है, खोद-खोदकर पूछ रहा है। वो आध्यात्मिक है सचमुच।

लेकिन हम उल्टे हो चुके हैं। हम झूठे लोगों को आध्यात्मिक मानते हैं, और जिज्ञासुओं को अकड़ू या घमंडी बोल देते हैं।

आप उपनिषदों में जाते हैं, वहाँ क्या है? वहाँ कुछ बातें बोल दी गई हैं कि मान लो, या वहाँ प्रश्न-प्रतिप्रश्न का दौर चल रहा है लगातार? क्या पाते हैं आप? अष्टावक्र गीता में क्या हो रहा है? एक दिन अष्टावक्र को सूरुर आयी तो बैठ गए और बोले, 'अब मैं ये श्लोक-श्लोक बता रहा हूँ चेलों! चलो लिखो।' ऐसे अष्टावक्र गीता का जन्म हुआ? बोलिए, ऐसे हुआ क्या? या संवाद है?

और आप संवाद पर संवाद ही तो पाते हैं। छांदोग्य उपनिषद् अभी अंग्रेज़ी में हम लेकर चल रहे हैं, उसमें नारद-सनत्कुमार संवाद चल रहा है। अष्टावक्र गीता हम ए.पी. सर्कल पर लेकर चल रहे हैं, वहाँ पर अष्टावक्र-जनक संवाद चल रहा है। श्रीमद्भगवद्गीता तो हमारा केंद्रीय काम, मिशन है ही, उसमें कृष्ण-अर्जुन संवाद चल रहा है। और ये जितने लोग हैं, जिनसे बातचीत चल रही है, ये हल्के लोग कोई भी नहीं हैं। ये सब-के-सब मानने को तैयार नहीं होते आसानी से।

ये क्या करते हैं? ‘पूछो, हमारे पास कहने को कुछ नहीं है, तुम पूछोगे तो हम कुछ बोलेंगे।’ अंधविश्वास नहीं, बोध, बोध, बोध। और अंधविश्वास बस वही नहीं होता नींबू-मिर्च वाला। ये हम अपने भीतर जो जीवन के बारे में सौ तरह की मान्यताएँ रखते हैं, वो भी अंधविश्वास ही है। जाँचा करो, पूछा करो।

प्र: एक बात में और मैं स्पष्टीकरण चाहूँगा आचार्य जी, सामूहिक कल्पना भी तो होती है? जैसे लोकतांत्रिक तथ्य है। *ऑब्जेक्टिव*, ये मेज़, सबने देखी ये मेज़ है। तो अंधविश्वास जो फैला हुआ है, वो सामूहिक कल्पना है?

आचार्य: सामूहिक कल्पना को ही तथ्य बोलते हैं। ऐसी कल्पना जो सब कर रहे हों वो तथ्य बन जाती है। उदाहरण के लिए – हिटलर के समय में ये तथ्य था कि यहूदी बेईमान होते हैं, और उनको अगर खत्म कर दो तो कुछ बुरा नहीं है – ये एक तथ्य था, ये एक तथ्य है बिल्कुल। आज आप वैसी बात बोलो तो आपको पकड़कर के डाल देंगे एंटी-सेमिटिम्स (यहूदी-विरोधीवाद) जेल वगैरह में। पर उस समय ये तथ्य था।

नाज़ी पार्टी ऐसी छाई थी कि पूरा देश ही मानने लग गया था कि यहूदी तो होते ही ऐसे हैं कि इनको मारना ठीक है, ये तथ्य बन गया था।

सामूहिक कल्पना तथ्य बन जाती है। किसी चीज़ को अगर तथ्य के तल पर ले आ देना हो या तथ्य जैसा स्वीकार करा देना हो तो बस ये करो कि पाँच-सौ, हजार, दस हजार या दस करोड़ लोगों का एक दल बना लो, जो सब एक ही बात कह रहे हों। जो बात सब कह रहे हों वो बात तथ्य बन जाती है। इसीलिए तो तथ्य आखिरी चीज़ नहीं होता न।

और सत्य पर बैठकर जो देखते हैं, वो यही कहते हैं कि तथ्य और कल्पना में कोई बहुत अंतर नहीं है। 'तीन कहाँ से भेद आ गए साधो? ये तुमने कहाँ से तीन विभाजन बना दिए, कि कल्पना है, फिर बीच में तथ्य है और फिर ऊपर सत्य है। साधो, दो ही अंतर होते हैं।' भेद तो एक ही होता है, विभाजन रेखा तो एक ही खिंचती है, सार और असार के बीच में, सत्य और असत्य के बीच में। और सत्य यदि ऊपर बैठकर एक है तो नीचे जितना है वो सब क्या है?

श्रोतागण: तथ्य ही है सब।

आचार्य: तो माने तथ्य भी क्या है?

श्रोतागण: कल्पना ही है।

आचार्य: तो कल्पना जब व्यक्तिगत होती है तो हम उसे कह देते हैं?

श्रोतागण: सपना।

आचार्य: और वही कल्पना जब सामूहिक हो जाती है तो कह देते हैं?

श्रोतागण: सच।

आचार्य: सपना एक आदमी को आया तो कह देते हैं 'सपना'। वही सपना सब एकसाथ देख रहे हों तो कह देते हैं सच है। आपको कैसे पता कि यहाँ (सत्र में) जो कुछ हो रहा है आप सबका सामूहिक सपना नहीं है?

प्र: तो फिर तो विज्ञान भी सामूहिक सपना ही हो गया, *ऑब्जेक्टिव*?

आचार्य: जगत् के बारे में जो बातें कही जाती हैं, वो सब हैं तो हमारे कहने की न, हमने कही हैं। विज्ञान भी किस चीज़ पर चलता है? दो बातें – *वेरीफ़ाइबिलिटी* (सत्यापनीय) और **फॉल्सिबिलिटी**। *वेरीफ़ाइबिलिटी* होती है कि मैंने जो कहा उसका पियर रिव्यू होगा, ठीक? मैंने एक बात कही कि मैंने शोध करा, उसका ऐसा-ऐसा नतीजा आया। अब कोई और जाकर के उन्हीं स्थितियों में उसी प्रयोग को दोहराएगा और जाँचेगा और कहेगा, 'मैंने दोहरा कर वेरीफ़ाई कर दिया कि इन्होंने जो बात कही थी, पेपर में जो प्रकाशित हुई है, वो बात ठीक है।' तो मेरी बात का प्रमाण क्या बन रहा है? किसी दूसरे आदमी की बात।

कसौटी हम किसको बना रहे हैं? एक समूह को ही तो बना रहे हैं, समाज ही तो कसौटी है। तो विज्ञान भी एक तरह से समाज पर ही चलता है। विज्ञान भी एक प्रकार से समाजशास्त्र ही है कि हम किसी बात को कैसे मान लेते हैं कि अब ये *एक्सेप्टेड थ्योरी* (स्वीकृत सिद्धांत) है? वो *एक्सेप्टेड थ्योरी* इसलिए है कि मैंने जाँचा, वही परिणाम आया, फिर उन्होंने जाँचा, फिर इन्होंने जाँचा, उन्होंने जाँचा, उन्होंने जाँचा, सब ने जाँचा परिणाम एक आया तो हम कह देते हैं कि अब ये सिद्धांत हमें स्वीकार है, '*थ्योरी एक्सेप्टेड*'। विज्ञान ऐसे चलता है। लेकिन विज्ञान बहुत ऊँचा है, किससे?

प्र: कल्पना से।

आचार्य: अंधविश्वास से। विज्ञान में कम-से-कम कोई बात आप जाँचते तो हैं। अंधविश्वास में तो आपको जाँचने का मौका ही नहीं दिया जाता। नहीं दिया जाता माने नहीं दिया जाता। 'हम कह रहे हैं न, ऐसा है, बस है, मानो। और नहीं मानोगे तो अभी धरती फटेगी और समा जाओगे वहीं पर, सज़ा मिलेगी, कुलदेवता कुपित हो जाएँगे।' वहाँ पर जाँचने की कोई संभावना ही नहीं है, वहाँ बस मान लो। तो इसलिए जितनी भी वैज्ञानिक बातें हैं, वो सत्य से नीचे की होती हैं, लेकिन अंधविश्वास से बहुत ऊपर की होती हैं।

प्र: तो ये धार्मिक स्थलों से जो मान्यताएँ जुड़ी होती हैं, ये तो सामूहिक कल्पना ही तो हुई, उनको तो *वेरीफाई* कर नहीं सकते।

आचार्य: देखिए, धार्मिक स्थलों से जुड़ी जो कथाएँ बनाई गई थी, उनमें से कम-से-कम कुछ ऐसी हैं जो अहंकार को मुक्तिमुखी बनाने के लिए बनाई गई थी। हमने कहा था न, माया दो प्रकार की। जगत् में ही ऐसी जगहें बनाई गई थी जो आपको मुक्ति की तरफ़ ले जाएँगी। तो उद्देश्य तो यही था कि तीर्थ स्थापित किए गए हैं या मंदिर इत्यादि बनाए गए हैं ये इसलिए हैं ताकि अहंकार मुक्ति की ओर जा पाए। अब किताबें सब किताबें होती हैं, उपनिषद् भी तो पुस्तकें ही हैं न, या गीता भी तो पुस्तक ही है। पर वो एक विशेष प्रयोजन से लिखी गई है कि उसको पढ़ोगे तो मुक्त हो जाओगे। और सत्तर तरह की किताबें हैं, फिक्शन हैं, ये-वो बातें... उनको पढ़ोगे तो दुनिया के कीचड़ में और धँस जाओगे।

तो किसी भी बात को हम सिर्फ़ इसलिए नहीं खारिज कर सकते – हम जहाँ पर खड़े हैं, हमारे लिए बोल रहा हूँ, मुक्तजनों के लिए नहीं बोल रहा हूँ; अपनी और आपकी बात कर रहा हूँ – हम जहाँ खड़े हैं, हम किसी भी बात को सिर्फ़ इसलिए खारिज नहीं कर सकते कि वो भौतिक है। बिल्कुल ठीक बात है, पत्थर भौतिक है, पानी भौतिक है, गंगा भौतिक है, मंदिर

भौतिक है, सब भौतिक है पर सिर्फ इसलिए कि वो भौतिक है, हम ये नहीं कह सकते कि इसे ठुकरा दो, *रिजेक्ट*। अगर उस भौतिकता से मैं भौतिकता के पार जा पा रहा हूँ, तो वो भौतिकता शुभ है मेरे लिए। ये जगह (सत्र) भी तो भौतिक है न, यहाँ पर आप क्या कर रहे हो? यहाँ पर आप इसलिए आए हो कि यहाँ पर हम आप में पिज़्ज़ा-बर्गर बाँटेंगे और बातें करेंगे कि और दुनिया को कैसे भोग लें, ये कर लें?

आप क्या करोगे? आप एक जंगल के बीचों-बीच फँसे हुए हो। आपको बाहर भी जाना है तो आप कहाँ से रास्ता निकालोगे? जंगल से ही तो निकालोगे न। तो जंगल में सबकुछ ही ऐसा नहीं होता जो आपका दुश्मन है, आपको समाप्त कर देगा, आपके लिए ठीक नहीं है। जंगल में ही ऐसे तत्व होते हैं जो आपको बाहर निकलने की राह दिखा देंगे।

मंदिरों को जगत् के पार जाने के साइनबोर्ड की तरह बनाया गया था। जैसे जंगल में किसी ने दिशा-निर्देशक कुछ चिह्न डाल दिए हों, *‘दिस वे’*। आप सिनेमा हॉल में जाते हो, दफ़्तर में जाते हो, वहाँ एग्ज़िट लिखा होता है न? वहाँ (दरवाज़े की ओर इंगित करते हुए) लिखा हुआ है उधर, *‘एग्ज़िट’*। तो मंदिर वही है; वहाँ लिखा नहीं होता है पर पढ़ा वैसे ही करिए, ‘एग्ज़िट’, ‘यहाँ से निकलने का रास्ता ये रहा’, कहाँ से निकलने का रास्ता?

श्रोतागण: अपने अहम् से।

आचार्य: ये अलग बात है कि वो सब समाप्त हो गया, सब समाप्त हो गया।

आज जो अवस्था है हमारे मंदिरों वगैरह की, वहाँ से मुझे नहीं लगता कि किसी को भी मुक्ति लाभ होता है। लाभ क्या होगा, अब तो मंदिर बनाए भी इसीलिए नहीं जाते कि मुक्ति भी मिले। अब तो मंदिर भी हमारे अहंकार का सूचक होकर रह गए हैं। आप भी कैसे कहते हो कि फ़लाने मंदिर जाना है, वो बहुत बड़ा मंदिर है – बड़ा है माने क्या? मंदिर है कि सेठ जी की कोठी है कि तुम उसका आकार देख रहे हो? भई किसी आदमी के बहुत पैसा आ जाता है तो वो क्या करता है? अपने लिए बहुत बड़ा-सा महल बनवाता है। तो मंदिर को भी तुमने उसी कसौटी पर कस लिया कि कितना बड़ा है।

वैसे ही जैसे देखते हो कि किसकी जेब कितनी बड़ी है, किसकी प्रतिष्ठा कितनी बड़ी है, तो वैसे ही देखते हो मंदिर कितना बड़ा है। या, 'बड़ी मान्यता है, बड़ी मान्यता है, फ़लानी जगह की बड़ी मान्यता है!' मान्यता है माने? मंदिर तो मान्यता का विध्वंसक होना चाहिए न। मंदिर वो जगह है जहाँ जाकर सारी मान्यताएँ समाप्त हो जाएँ। हमने मंदिरों को भी अपनी मान्यताओं में शामिल कर लिया।

तो अच्छी बात बस ये है कि ग्रंथ बचे रह गए क्योंकि उनको आप दूषित नहीं कर सकते। कम-से-कम अब नहीं कर सकते, उनमें जो भी मिलावट होनी थी वो पहले हो चुकी, अब नहीं कर पाएँगे। तो आज तो आध्यात्मिक प्रक्रिया में मंदिर या तीर्थ से कहीं ज़्यादा महत्व स्वाध्याय का है।

बहुत विनम्रता के साथ कह रहा हूँ, और बहुत सोच-समझकर कह रहा हूँ कि श्रीकृष्ण से सम्बन्धित जगहों पर आज आप जाएँगे तो मुझे नहीं लगता कि बहुत लाभ होगा। उन स्थलों की, उन भौगोलिक स्थानों की अब कोई विशेषता रह नहीं गई है, उनको आदमी के स्पर्श ने बड़ा दूषित कर दिया। हम बहुत गंदे लोग हैं, जिस चीज़ को छू दें, गंदा कर देते हैं। तो उन

जगहों में अब कुछ विशेष नहीं बचा है। हाँ, श्रीमद्भगवद्गीता है जो कि हमारा सौभाग्य है कि दूषित नहीं होने पायी। कृष्ण आपको आज अगर मिलेंगे तो गीता में मिलेंगे।

प्र३: नमस्कार सर, सर आपकी बातें सुनकर एक कबीर का...

आचार्य: कबीर नहीं, कबीर साहब।

प्र३: हाँ, कबीर साहब का दोहा याद आता है, 'दुविधा में दोनों गए, माया मिली न राम।' तो होता क्या है, जैसे आपकी बातें सुनता हूँ, मैं गीता समागम से भी जुड़ा हुआ हूँ, तो जब बातें सुनता हूँ, पढ़ता हूँ तो बहुत एक आनंद की अनुभूति होती है, लगता है एक सही रास्ते में आगे बढ़ रहा हूँ। फिर जैसे अभी बातें सुन रहा हूँ, एक आनंद आ रहा है, फिर बाहर गया या दुनिया के साथ फिर से मिलना शुरू किया, तो फिर से एक भय, डर आने लगता है किसी चीज़ का कि जॉब सिक्योरिटी है, या कुछ भी लाइफ़ में चीज़ें हैं।

तो आपने जैसे *एग्जाम्पल* (उदाहरण) भी दिया कि चोटी पर पहुँच गए फिर नीचे आ गए। तो इसको *सस्टेन* (क्रायम) कैसे करके रखें? ये जो *फ्रीलिंग* अभी आती है सुनकर कि एक समझ आ रहा है कि अहम्-वृत्ति से निकली हुई चीज़ें हैं ये। इसको *होल्ड* (स्थिर) करके कैसे रखें कि फिर ये फिसल न जाए? और दूसरी चीज़ एक ओर आती है जैसे वो मैंने *एग्जाम्पल* दिया कि माया मिली न राम। अब जब माया भी दुनिया में दिखती है, दोस्त बुलाते हैं कि आ जाओ, बियर पीते हैं, पिज़्ज़ा खाते हैं, तो उसमें भी बहुत आनंद आता है। तो अब ये *कंप्यूज़न* (उलझन) है कि यहाँ भी आनंद आ रहा है और चला जा रहा है। वहाँ अभी आ रहा है और चला जा रहा है। तो फिर किस तरीके से इसको थोड़ा समझें?

सर यह पहला प्रश्न है, और फिर दूसरा फॉलो-अप (प्रति-प्रश्न) है...

आचार्य: अरे रुक जाओ! दो पूछ लिए पहले, मुझे याद थोड़े ही रहेगा सब। पहला ये है कि पकड़कर कैसे रखें, है न? बाहर जैसे दुनिया जगमग है न, और दुनिया के पास बहुत ताकत है तुम्हें खींच लेने की, तुम्हें बहका देने की; उसी दुनिया ने तरीके भी विकसित कर रखे हैं, जो यहाँ बात हो रही है, उसको दोहराने के। उदाहरण के लिए आप बाहर जाएँ अगर, तो टेक्नोलॉजी सम्बन्धी बहुत सारी चीज़ें हैं, जिसमें बिल्कुल खो सकते हैं। आप गेमिंग के नशे में धुत हो सकते हैं, आप सोशल मीडिया पर घंटो-घंटो बैठे रह सकते हैं। ये सब टेक्नोलॉजी से आता है न, उसी टेक्नोलॉजी ने आपको ये साधन भी तो दिया है कि जो यहाँ बात हो रही है उसको आप सौ बार सुन लीजिए।

पहले बाहर आकर्षण और विक्षेप कम हुआ करते थे न – आज से दो-सौ साल पहले की बात करोगे तो – कम होते थे न? पर फिर पहले रिकॉर्डिंग की सुविधा भी नहीं होती थी, या होती थी? आज बाहर तमाम तरह के विक्षेप हैं तो फिर आज टेक्नोलॉजी उपलब्ध है कि आप जो बात सुनना चाहो, जहाँ से सुनना चाहो, जिस समय सुनना चाहो, जिस जगह सुनना चाहो, जिसकी बात सुनना चाहो तुरंत सुन सकते हो। ये कोई छोटा-मोटा वरदान है?

पहले कहीं कोई ज्ञानी होता था, लोग पैदल चलकर उसके पास पहुँचते थे, महीनों-महीनों की यात्रा करके – सुना है न ये सब? महीनों पैदल यात्रा करके जा रहे हैं कि कोई ज्ञानी है, फिर जाकर के गिर जाते थे कहते थे, ‘दर्शन हो गए’। वो कहता था, ‘हाँ, बताओ बच्चा कैसे हो?’ बोले, ‘एक छोटा-सा सवाल था, वही पूछने आए थे।’ उन्होंने छोटा-सा सवाल पूछा, ज्ञानी जी ने घंटाभर भाषण झाड़ दिया। अब वो घंटेभर का भाषण उन्हें याद कितना

रहेगा? वो थका हुआ आदमी है, वो बेचारा... पर सुविधा नहीं थी कि रिकॉर्ड कर पाओ।

आपके भीतर पात्रता ऐसी होनी चाहिए थी कि तत्काल ग्रहण कर लो। ज़बरदस्त श्रवणशक्ति चाहिए थी कि जैसे श्रवण हुआ वहीं मनन भी हो गया। जो बात कान पर पड़ी वो सीधे मन में बैठ गई। और ये कितनी मुश्किल बात थी एक बार को सोचकर देखिए। पहले तो जहाँ जा रहे हैं, उनका कुछ पता-ठिकाना मालूम नहीं। अब तो सबकुछ पता होता है, एक-एक बात पता है। पाँच मिनट ऊपर-नीचे नहीं हो सकता। आप चले होंगे गुड़गाँव से यहाँ आने के लिए, जीपीएस आपको जितना समय बताता है, आमतौर पर ठीक उतना ही लगता है। पहले कुछ पता ही नहीं होता था, रास्ता है, जंगल है, पहुँचेंगे, नहीं पहुँचेंगे, कोई बीमारी लग जाए, क्या हो जाए, डाकू लूट ले, कुछ पता नहीं, नदी पड़े कोई वो बाढ़ आयी हुई है...

तो टेक्नोलॉजी ने ही आपको तमाम तरह की आज सुविधाएँ भी तो दी हैं। उन सुविधाओं को आप सही दिशा में इस्तेमाल करें। फ़ोन पर आप इंस्टाग्राम की स्कॉलिंग करते जा रहे हो, करते जा रहे हो और साथ ही ये भी कह रहे हो कि 'सर, आपकी बात सुनते हैं, उन बातों से तात्कालिक राहत मिल जाती है।' तो वही बातें इंस्टाग्राम पर भी तो मौजूद हैं। बाकी जितनों को सुनते हो, करो सबको ब्लॉक, काहे नहीं करा आजतक?

सवाल में अगर ईमानदारी होती तो सवाल पूछने से पहले ही उन सबको ब्लॉक कर चुके होते। फिर कहते कि ब्लॉक कर दिए हैं तब भी वो घूम-घूमकर आते हैं – ऐसा कैसे हो जाएगा? ऐसा तो नहीं है।

मैं पूछ रहा हूँ, बाहर आप फिसल जाते हो या फिसल जाना चाहते हो? अब चाहत का तो कोई उपचार नहीं होता। आपका मन ही है फिसलने का तो कोई क्या करेगा? फिर तो चलिए मन के चलाए।

किसी-न-किसी जगह पर स्वीकारना होता है कि जो चल रहा है वो मेरी मर्जी से चल रहा है, तो जो चल रहा है उसको बदला भी सिर्फ एक तरीके से जा सकता है, मेरी मर्जी से, मैं मालिक हूँ।

वेदान्त आपको बड़ी शक्ति से ओतप्रोत कर देता है। आपके हाथों में चुनाव की ताकत रख देता है। वो कहता है, 'तुम परिस्थितियों के हाथ में खिलौना नहीं हो, तुम हवाओं के बीच में तिनका नहीं हो। तुम्हारे साथ जो हो रहा है, वो तुम्हारा अपना चयन है। बस तुम बेहोश हो इसलिए ग़लत चयन करते जा रहे हो बार-बार। क्यों बेहोश हो? जगो!'

इसीलिए वेदान्त का ज़ोर कुछ करने पर नहीं, जागने पर है। कहते हैं, 'तुम जग जाओ फिर क्या करना है, क्या नहीं करना है खुद ही देख लोगे। तुम जगो।' लेकिन जगना है या नहीं जगना है, वो भी अपना...?

श्रोतागण: चुनाव होता है।

आचार्य: तुम नहीं जगना चाहते, कोई क्या कर लेगा? कृष्ण गीता कह गए, लेकिन क्या सब अर्जुन हैं? कितने जग गए उससे? समझाने वालों की तो कभी कमी रही नहीं, समझ में कितनों को आया? खोट क्या समझाने वालों में थी? तुम्हें समझना ही नहीं तो क्या होगा? तुम्हें समझना ही नहीं तो समझाने वाला क्या कर लेगा?

कहे कबीर काली चादर कैसे चाढ़े रंग । गुरु बेचारा क्या करे शिष्य न लागे अंग ॥

~ कबीर साहब

तुम काली चादर बनकर बैठे हो, तुम्हें कालेपन से मोह है, तुम्हारा दिल आ गया है, 'ब्लैक इज़ सेक्सी'। अब क्या करेंगे कबीर साहब? वो ऐसे देख रहे होते हैं, (बेबसी से बैठने का अभिनय करते हुए) क्या करेंगे? और मैं कहाँ कह रहा हूँ कि तुम दोस्तों के साथ बैठो, और तुम पिज़्ज़ा खा रहे हो, बीयर पी रहे हो – पता तो हो कि कौनसे दोस्तों के साथ बैठना है! कह रहे हो, 'उसमें आनंद आता है।' जिनके साथ बैठा करते थे – कोई पहली बार तो तुमने बियर पी नहीं होगी – पाँच-दस साल पहले जिनके साथ पीते थे, वह आज भी तुम्हारे साथ हैं क्या सब? उनमें से दस को तो ब्लॉक कर चुके हो, पाँच को गाली देते हो, तीन तुम्हारा रुपया ले करके भाग गए। दो का रुपया तुमने चुरा रखा है। हाँ या न?

अतिशयोक्तियों को मेरी माफ़ करिएगा। मुझे मालूम है, मैं बड़ा-चढ़ाकर बोल रहा हूँ, पर इशारा समझिए।

तो आनंद कहाँ है ऐसे दोस्तों के बीच? दोस्त भी किसको बनाना है ये बात भी तो गीता ही बताएगी। गीता ये थोड़े ही कह रही है कि सिर्फ़ कृष्ण से दोस्ती करो और किसी से नहीं; गीता कह रही है – कृष्णत्व से दोस्ती करो। कृष्ण माने वो थोड़े ही जो ऐतिहासिक चरित्र हैं, जो अर्जुन के समक्ष बैठे हुए हैं रथ पर, उनको नहीं कृष्ण कहा जाता, वो तो गए। जो हाड़-माँस का होता है वो तो जाता है। गीता इसलिए है ताकि कृष्णत्व के प्रेम में पड़ जाओ। तुम्हारे दोस्तों में कृष्णत्व है? अगर है, तो बहुत अच्छी बात है, गीता

सार्थक हो गई तुम्हारे लिए। अगर नहीं है तो गीता तुमसे कह रही है ऐसे दोस्तों से किनारा करो। ये किस काम के हैं? इनसे कुछ नहीं मिलने का।

अध्यात्म सही सम्बन्ध बनाना सिखाता है। अध्यात्म ये नहीं कहता कि जगत् से नाता ही तोड़ लो, जगत् से नाता तोड़ कर कहाँ जाओगे? मर भी जाओगे तो राख इसी जगत् में रहेगी। बल्कि तुम तो एक जगह रहते हो, राख तो जगह-जगह बिखेर दी जाती है, ल्यो! जगत् से भागना चाहते थे, मिट्टी में मिल गए। कौन भाग सकता है जगत् से? इसी जगत् में रिश्ते सही बनाओ न, आनंद वहाँ है।

जिसको तुम कह रहे हो दोस्तों के साथ पिज़्ज़ा, बियर में आनंद आता है, वो आनंद नहीं है, वो क्षणभर की उत्तेजना है। कोई चुटकुले मार रहा है, कोई लड़कियों की बात कर रहा है, कोई बता रहा मैंने क्रिप्टो में पैसे कैसे बना लिए। थोड़ा-थोड़ा सुरूर चढ़ रहा होता है तो ऐसा लगता है, 'वाह! वाह! वाह!'

और फिर जब सोकर उठते हो? मुँह गंधा रहा है, पिज़्ज़ा पड़ा हुआ है। वही पिज़्ज़ा जब ठण्डा हो जाता है तो कैसा हो जाता है? वो भी आधा खाया हुआ! उसकी एक स्लाइस ली है, आधी खा ली। फिर नशा चढ़ा तो गिर गए, वह भी गिर गई और छः घंटे बाद सोकर उठते हो तो देखते हो तो कैसी दिखाई दे रही होती है? अब कैसा लग रहा है? ये आनंद है?

आनंद की पहचान होती है नित्यता। ये क्षणिक उत्तेजना है, थोड़ी देर के लिए ऊबाल आ गया। फिर क्या हुआ? कुछ नहीं हुआ। फिर ये होने लग गया, 'ओय! आज तो डच करना था न, पर वो डोमिनोज वाले को दिया तो मैंने बत्तीस-सौ।'

‘भाई, वो कैश नहीं है।’

‘अरे! पेटीएम कर दे न।’

‘भाई, मेरा वो अनइनस्टॉल हो गया है।’

‘इंस्टॉल कर ले न।’

‘भाई नेटवर्क नहीं आ रहा।’

‘मैं हॉटस्पॉट देता हूँ, कर ले न!’

‘(इंस्टॉल करने का अभिनय करते हुए) यार, अजीब आदमी है तू! कह रहा हूँ न बाद में कर दूँगा। भाई पर यकीन नहीं तुझको? अब ये नौबत आ गई है, भाई पर शक करता है? छोड़ यार जा रहा हूँ मैं; दिल तोड़ दिया तूने।’ ये आनंद है?

और वो जाते-जाते भी ऑरिगैनो सीज़निंग होगी वो जेब में भरकर जा रहे हैं।

(श्रोतागण हँसते हैं)

कह रहे हैं, ‘ये काहे को छूटे?’ आनंद बताओ न। अध्यात्म तुम्हें सुख से वंचित थोड़े ही करना चाहता है, तुम्हें महासुख देना चाहता है। लेकिन महासुख तब मिले जब तुम पहले मानो कि अभी तुम बहुत दुखी हो।

तुम झूठमूठ ही, ‘मैं तो आनंदित हूँ, मैंने पिज़्ज़ा खा लिया।’ अच्छा ठीक है, मैं तुम्हें विकल्प देता हूँ। यहाँ (सत्र) से बाहर उठकर जाओ, पिज़्ज़ा मैं तुम्हें

खिलाता हूँ। बोलो, अब बाहर जाकर पिज़्ज़ा खाना है या यहाँ बैठना है? जल्दी बोलो?

श्रोतागण: यहाँ बैठना है।

आचार्य: काहे? आनंद तो वहाँ है, आनंद तो पिज़्ज़ा में है, जाओ बाहर बैठो, पिज़्ज़ा मँगवाते हैं अभी।

प्र३: वहाँ भी है।

आचार्य: वहाँ भी है, आह हा!

(श्रोतागण हँसते हैं)

(व्यंग करते हुए) उसमें भी है तो इसको रोक देते हैं। मैं काहे को गला खराब कर रहा हूँ अपना। सब पिज़्ज़ा पार्टी करते हैं और बियर की बोतलें मँगा लेते हैं, उसमें भी तो है बराबर का ही है, एक ही बात है!

ये जितने लोग हैं, सब पागल ही तो हैं। देशभर से आ रहे हैं, कोई फ्लाइट से आ रहा है, कोई ट्रेन से आ रहा है। तीन दिन, चार दिन का समय निकाला है, यहाँ आकर होटल में रुके होंगे, पैसा खर्च करा है, संस्था को योगदान दिया है उसमें पैसा खर्च करा है। फ्लाइट, होटल में पैसा खर्चा करा है, समय निकाला है, कोई घर से लड़कर आ रहे हैं। सब पागल ही तो हैं! इन्हें तो बस इतना करना था, 'हेलो!' (फ़ोन मिलाने का अभिनय करते हुए) कौनसा होता है, वो वाला? सबसे ज़्यादा बिकता है? हाँ, 'चीज़ बर्स्ट मार्गरिटा'।

इतना पैसा क्यों खर्च करा आपने यहाँ आने के लिए? और इतना समय क्यों लगाया, उनका तो तीस मिनट का होता है डिलीवरी; *थर्टी मिनिट्स आनंदा* (चुटकी बजाते हुए)। यहाँ काहे के लिए आए हैं?

गुरुर, 'वो यार हैं मेरे, आनंद देते हैं मुझको।' किस दिन स्वीकार करोगे कि ये तुम्हारे यार-दोस्त, रिश्ते-नाते दो कौड़ी के नहीं हैं? अर्जुन को भी शुरू में हो रही थी असुविधा। कहे, 'कैसे मार दें दुर्योधन को? भाई है मेरा!' उसने भी पिज़्ज़ा और बियर पी होगी कभी-न-कभी तो।

(श्रोतागण हँसते हैं)

क्षत्रियों का घराना भाई, वो भी राजपुत्र सब। चलता रहा होगा सब, द्युतक्रीड़ा तो चलती ही थी। तो जब गैम्बलिंग है, तो बाकी चीज़ें भी होती होंगी। वो सब चलता ही रहा है, माँसाहार हम जानते ही हैं कि था। तो ये सब भी होता होगा। वो भी बोल रहा है – मुझे मज़ा तो उन्हीं के साथ आता है भाई; बाकी सब तो ठीक है, बंदे मस्त हैं। और कृष्ण अगर न तोड़ देते अर्जुन को तो अर्जुन ने तो बोल दिया था कि ये लोग ठीक हैं, मैं जा रहा हूँ यहाँ से, क्योंकि आनंद वहाँ भी तो है।

बेटा पूरी गीता यही है कि ये जिनको यार-दोस्त बोलते हो न, चलाओ बाण खटाखट, साफ़ करो एक-एक को।

(सब हँसते हैं)

एक मित्र है अर्जुन के पास, एक, और वो एक पर्याप्त है और एक ही होना चाहिए। जो कुनबा लेकर बैठे हो किसी काम के नहीं होते ये। अभी तीसरा बचा है सवाल?

प्र३: हाँ।

आचार्य: नहीं, मुझे लगा कुछ समझ में आयी होगी बात तो तीसरा बचा ही नहीं होगा। चलो बोलो।

प्र३: सर, इसका उत्तर जो मैं पूछ रहा हूँ, घर-घर उपनिषद् में मैंने पढ़ा है, आपने ऑलरेडी दिया है बस थोड़ी-सी स्पष्टता चाहिए थी। माया क्या है, ये तो आपने एक्सप्लेन किया। माया क्यों है, इस पर आपने लिखा कि इस क्वेश्चन में घुसना ही नहीं है क्योंकि ये इनफिनाइट लूप है, इसमें घुसते ही रह जाओगे, कुछ निकलकर आएगा नहीं। मुक्ति की ओर बढ़ना है, ये ज़्यादा महत्वपूर्ण है, न कि ये समझना कि माया क्यों है। थोड़ा-सा मैं कंप्यूज़ हुआ जो आपने लिखा है घर-घर उपनिषद् में। तो इसी पर और थोड़ी स्पष्टता दें।

आचार्य: माया क्यों है, ये प्रश्न किसको है, ये प्रश्न किसको है?

श्रोतागण: अहम् को।

आचार्य: अहम् को। अहम् को प्रश्न होना क्या चाहिए?

प्र: कि माया से मुक्ति कैसे मिले।

आचार्य: मुक्ति कैसे मिले। तो जो सही प्रश्न है, जो पूछने लायक प्रश्न है उसकी उपेक्षा करके अहम् ये क्यों पूछ रहा है कि माया क्यों है? देखो, देखो इरादा क्या होगा? ताकि माया बची रहे। तो माया क्यों है, ये पूछना ही माया है। बहुत तुमको अगर उत्सुकता हो रही है तो अधिक-से-अधिक ये पूछ लो कि माया किसको है। किसको है माया?

श्रोतागण: अहम् को।

आचार्य: अहम् को है, ठीक है। अहम् कौन है? पागल। ठीक है? माया किसको है? अहम् को, अहम् पागल है। चलो वो एक अपना पुराना उदाहरण – (पाँच उँगली को दर्शाते हुए) बताइए सात उँगलियाँ क्यों हैं? ये सात उँगलियाँ क्यों हैं? उन्होंने पूछा, ‘माया क्यों है?’ मैं पूछ रहा हूँ, सात उँगलियाँ क्यों है? मुझे दिख रहीं हैं सात उँगलियाँ, बताइए सात उँगलियाँ क्यों हैं?

जो है ही नहीं उसके बारे में कैसे बताऊँ कि क्यों हैं?

माया माने जो है ही नहीं पर तुमको लगता है कि है। जो है ही नहीं उसके बारे में पूछ रहे हैं, ‘बताइए क्यों है?’ मैं पूछ रहा हूँ, बताओ मेरी छठी-सातवीं उँगली क्यों है? तुम मुझे बता दो ये सात उँगली (अपने हाथ की पाँच उँगलियाँ दिखाते हुए) क्यों हैं, मैं तुम्हें बता दूँगा माया क्यों है।

(सब हँसते हैं)

माया वो जो है ही नहीं। जो है ही नहीं उसका कारण क्या होगा। कारण अगर बहुत जानना चाहते हो तो कारण है ‘मैं’। पर फिर फँसोगे, कहोगे, ‘मैं’ का क्या कारण है?’ तो कहोगे, ‘माया’। वो उसी में तुम ऐसे गोल-गोल घूम जाओगे। और गोल घूमकर के बस एक काम है, जिससे बच जाओगे, कौनसा काम? मुक्ति। तो क्यों है नहीं पूछा जाता; है ही नहीं।